वर्ष ८, अंक ११

श्रीकृष्णाय नमः

श्रावण पूर्णिमा १९९१

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
ब्र० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षा और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्रव्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
डा० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१,
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई० रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
जमादार दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह नम्बर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		३२१
२.	पुराणगाथा	[ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी	३२२
३.	श्रीभगवच्चर्चा	[ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी	३२७
४.	मुकद्मा दिवानी	[ले० श्री भक्तरत्न मथुरा प्रसाद जी	३२९
५.	अविनाशी वैभव	[ले० श्री मथुरादास जी महाराज अयोध्या	३३१
६.	लाल (कविता)	[रचयिता पं बाबूलाल जी भार्गव	३३४
७.	कर्त्तव्यपरायणता	[ले० श्री प्रभुदेव ब्रह्मचारी आश्रम	३३५
८.	अथ आर्त्तत्राणपरायणाष्टादशकम्		३३६
९.	शक्ति-स्तुति (कविता)	[रचयिता पु० प्रतापनारायण जी	३३८
१०.	ईश्वर	[ले० श्री यमुनाप्रसाद जी श्रीवास्तव	३३९
११.	सद्गुरु	[ले० श्री दिनेश	३४२
१२.	चरित चर्चा	[ले० श्री पं० महादेव शर्मा साहित्याचार्य	३४५
१३.	सारंग पानी (कविता)	[रचयिता प्रभुदेव ब्रह्मचारी आश्रम	३४६
१४.	योग-साधन	[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती	३४६
१५.	श्री अक्कलकोट स्वामी महाराज का परिचय	[ले० श्री रामचन्द्रसिंह यादव	३४९
१६.	गायत्री		३५१
१७.	भजन	[संग्रहकर्ता प्रभुदेव ब्रह्मचारी आश्रम	३५२

GITA PRESS, GORAKHPUR.

गोवंशप्रिय कन्हैया

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ } श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, श्रावण पूर्णिमा, जून १९३४ { अंक ११ पूर्ण संख्या ९४

वेदोपदेश

ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥ १ ॥

नव-बलशाली ऋभुलोग हमारे रक्षक हैं। अन्न और वास-गृह के दाता ऋभु लोग हमारे निवास हेतु हैं; इसलिये ऋभु गण हमें वरदान दें। ऋभु आदि देव वृन्द, हम लोग तुम्हारी रक्षा प्राप्त कर, अनुकूल दिनमें, अभिषव-विहीन शत्रुओं की सेना को परास्त करें ॥ १ ॥

वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २ ॥

इन्द्र, ऋभुओं के साथ मिल कर तुम अन्न-दान के समय हमें अन्न दान करते हो। विचित्र धन-दान करते हो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस धन को पूजित करें।

आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं संमहेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥ ३ ॥

नेता ऋभुगण, हमारे लिये अन्न प्रस्तुत करो। हमारे रथ के लिये धन तयार करो। हमारे घोड़े के लिये अन्न प्रस्तुत करो। संसार हमारे जयशील धन की प्रतिदिन पूजा करे और हम संग्राम में, अपने बीच उत्पन्न या अनुत्पन्न शत्रुओं को पराजित करें ॥ ३ ॥

ऋभुक्षणमिन्द्र माहुव उतय ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिये ॥ ४ ॥

अपनी रक्षा के लिये महान् इन्द्र को तथा ऋभु, विभु, वाज और मरुतों को, सोमपानार्थ, हम बुलाते हैं। मित्र, वरुण और अश्विनी कुमारों को भी बुलाते हैं। वे हमारे धन, यश, कर्म और विजय को सिद्ध करदें ॥ ४ ॥

ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्मां अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उतद्यौः ॥ ५ ॥

संग्राम के लिये हमें ऋभु धनदें। समर विजयी वाज हमारी रक्षा करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी यह प्रार्थना पूजित करें ॥ ५ ॥

(ऋक् अ० १ सू० ११०-१११-मं० ७, ६, ३, ४, ५,)

पुराण-गाथा ।

हिरण्याक्ष दिग्विजय

(ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी)

नारद-हे महर्षियो ! ब्रह्मा जी का कथन सुनकर देवताओं की शंका निवृत्त हो गयी और वे सब देवलोक को लौट गये। भर्ता के आदेश से पुत्रों से शंका करती हुई साध्वी दिति ने पूरे सौ वर्ष पीछे दो जोड़ले पुत्र उत्पन्न किये। उनके उत्पन्न होने पर पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग में लोकों को भय देने वाले बहुत से उत्पात हुए। पर्वतों सहित पृथिवी हिलने लगी, सब दिशायें जलने लगीं तेज सहित वज्र गिरने लगे, अशुभ सूचक केतु उदय हुए, तीक्ष्ण स्पर्श वाला वायु चलने लगा, वायु के झोंकों से बड़े २ वृक्ष गिरने लगे, सूर्य की प्रभा मंद होगयी ब्रह्मांडभर में अंधेरा छा गया, इत्यादि अनेक उत्पात

हुए। उनको देखकर सिवाय महापुरुषों के समस्त प्रजा विश्व प्रलय समझ कर डर गयी।

हे मुनियो! उत्पन्न होते ही दोनों आदि दैत्य अपना पुरुषार्थ दिखलाने लगे। वज्रसार काया से सुमेरुपर्वत के समान बढ़ने लगे। वे दोनों स्वर्ग को छू रहे थे, उन्होंने अपने सुवर्ण के करोड़ों किरीटों से दिशायें व्याप्त करली थीं, उनकी भुजाओं में बाजुबन्द चमक रहे थे, पद २ पर अपने चरणों से पृथिवी को कंपाते थे और शोभन कांची वाली अपनी कटि से सूर्य को उल्लांघ कर खड़े होते थे। प्रजापति कश्यप ने दोनों का नाम करण किया। दोनों जोड़लों में से जो पहले अपने देह से उत्पन्न हुआ था, उसका नाम हिरण्यकशिपु और जो पहले माता के पेट से उत्पन्न हुआ था, उसका नाम हिरण्याक्ष रक्खा। हिरण्यकशिपु ने लोकपालों सहित तीनों लोकों को अपनी भुजाओं से अपने वश कर लिया क्योंकि ब्रह्मा के वरदान से उसका मृत्यु किसीसे नहीं हो सका था।

हे ऋषियो! हिरण्यकशिपु का छोटाभाई हिरण्याक्ष दिनरात अपने भाई का भला चाहने वाला गदा हाथ में लेकर युद्ध की इच्छा से युद्ध करने वाले की खोज करता हुआ स्वर्ग में गया। कांचन के नूपुर बजाते हुए वैजयन्ती माला पहने हुए कंधे पर महा गदा रक्खे हुए उस दुस्सह बल वाले को देख कर जैसे गरुड़ को देखकर सर्प छुप जाते हैं, इसी प्रकार सब देवता छुप गये। इन्द्र सहित सब देवताओं को छुपा हुआ देखकर दैत्य-राज ने बड़े भारी शब्द से गर्जना करी और उनके युद्ध से निवृत्त होकर वह महा बलवान् भयंकर शब्द करने वाले गंभीर समुद्र में प्रवेश कर गया और मत्त हाथी के समान जलमें क्रीड़ा करने लगा उसको प्रविष्ट हुआ देखकर वरुण के जलचर सैनिक उसके तेज से दब कर और भयभीत होकर बहुत दूर चले गये। बहुत वर्षों तक समुद्र में क्रीड़ा करता हुआ वह वरुण की विभावरी नाम की पुरी में पहुंचा और नीच के समान प्रणाम करके कहने लगा। हिरण्याक्ष-हे अधिराज! आप लोकपाल हैं, अधिपति हैं, महान् कीर्ति वाले हैं, बड़े २ वीरों को युद्ध में जीत चुके हैं, संपूर्ण दैत्य दानवों को जीत कर पूर्व में आपने राजसूय यज्ञ किया था, आपके समान कोई योद्धा त्रिलोकी में दिखायी नहीं देता, मैं आपसे युद्ध करना चाहता हूं, यदि आपको अपने बल वीर्य का भरोसा हो, तो मेरे और आपके दो दो हाथ हों! मैं भी तो देखूँ कि आप कैसे वीर हैं।

वरुण-भाई! मैं अब वृद्ध होगया हूं। युद्ध करने से उपराम को प्राप्त होगया हूं। इसलिये तेरे साथ युद्ध नहीं कर सका। पुरातन पुरुष के सिवाय तेरे साथ युद्ध करने वाला मैं दूसरा नहीं देखता, वे ही तेरे साथ युद्ध करेंगे, दैत्यों के साथ युद्ध करने को और उन्हें परास्त करके यमपुर पहुंचाने को ही भगवान् अनेक अवतार धारण करते हैं। भाई! उन्हीं से तू युद्ध कर, तेरा समस्त गर्व दूर हो जायगा! भगवान् किसी का गर्व देख नहीं सके, जो कोई बलका, वीर्य का, ऐश्वर्य का विद्या का अभिमान करता है, उसका अभिमान मधुसूदन दूर कर देते हैं, क्योंकि यह अभिमान ही सर्व अनर्थों का मूल है, इसी के कारण से सुख रूप आत्मा दुःख का अनुभव करता है, इसी के अनुग्रह से नित्य आत्मा अपने को जन्मने मरने वाला मानकर अनेक ऊंच नीच योनियों में जन्मता मरता रहता है। इसी अहंकार के कारण से असंग आत्मा कर्ता भोक्ता बन कर अनेक पुण्य पाप करता हुआ, उनका फल सुख दुःख भोगता है, अहंकार के कारण से चारों दिशाओं में व्यापक

आत्मा साढ़े तीन हाथ का बनकर रोता पीटता रहता है। सारांश यह है कि अभिमान ही जन्म मरण, बन्ध मोक्ष से मुक्त शुद्ध बुद्ध आत्मा को संसार में भटकाता है। हे हिरण्याक्ष! तुझे भी इस अभिमान ने मोहित कर दिया है, इसलिये तू अपने समान किसी को बली नहीं समझता! भाई! काल भगवान् एक हो कर भी अनेकों को जीत लेते हैं और कायर हो कर भी बड़े २ शूर वीरों को हरा देते हैं। अनादि काल से न मालूम कितने शूरवीरों को काल भगवान् भक्षण कर गये हैं, चराचर जीव काल के गाल में बैठे हुए हैं, काल के गाल से कोई प्राणी निकल नहीं सका काल से सब हार गये हैं और भगवान् तो काल के भी काल हैं, इसलिये उनसे कोई जीत नहीं सका। यदि तू कहे कि वे तो अशरीरी हैं मैं उनसे कैसे युद्ध करूंगा, तो इसका उत्तर यह है कि अशरीरी हो कर भी वे भक्तों के लिये शरीर धारण कर लेते हैं, और भक्तों के शत्रुओं को परास्त करते हैं। तेरा गर्व करना व्यर्थ है, मेरे कहने से अपने बल का गर्व त्याग दे और सुखी हो जा! इतना कहने पर भी यदि तुझे अपने बल का गर्व है, तो विष्णु भगवान् से जा कर युद्ध कर! जब तक ऊंट पहाड़ के नीचे नहीं आता, तभी तक अपने को ऊंचा समझता है और पर्वत के नीचे आते ही उसका सब गर्व दूर होजाता है, इसी प्रकार तेरा गर्व दूर हो जायगा।

नारद–हे ऋषियो! भावी बलवान् है, वरुण के समझाने पर भी हिरण्याक्ष युद्ध करने से उपराम को नहीं प्राप्त हुआ किंतु मेरे पास आकर और मुझसे भगवान् का पता पूछकर रसातल को चल दिया क्योंकि उस समय सूकर रूप धारण करके भगवान् पृथिवी का उद्धार करने को रसातल गये हुए थे। जब भगवान् रसातल में पहुंचे तो वसुंधरा देवी उनकी स्तुति करने लगी।

वसुंधरा–हे शंख चक्र गदापद्मधारी कमलनयन भगवन्! आपको नमस्कार है, पूर्वकाल में मैं आपसे ही उत्पन्न हुई थी। हे जनार्दन पहले भी आपन हो ने मेरा उद्धार किया था, हे प्रभो! आज आप इस रसातल से मेरा उद्धार कीजिये! जैसे आप मेरे उपादान कारण हैं, इसी प्रकार आकाशादि अन्य भूतों के भी आप उपादान कारण हैं। हे परमात्म स्वरूप! आपको नमस्कार है। हे पुरुषारतन्! आप को नमस्कार है! हे कारण कार्य रूप! आपको नमस्कार है। हे काल स्वरूप! आपको बारम्बार नमस्कार है। हे प्रभो! जगत् की सृष्टि आदि के लिये आप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप धारण करके संपूर्ण भूतों की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाले हैं। हे गोविन्द! जब संपूर्ण जगत् जलमय होजाता है, तब सबको भक्षण करके अन्त में एक आप ही जल में शयन करते हैं, उन आपका ही मनीषी चतुर पुरुष चिन्तन करते हैं, हे प्रभो! आपके परम तत्त्व को कोई नहीं जानता, इसलिये अवतारों में आपका जो रूप प्रकट होता है, इसी रूपको देवगण पूजा करते हैं। हे वासुदेव! आप पारब्रह्म की आराधना करके ही मुमुक्षु मुक्त होते हैं और हो सके हैं, आपकी आराधना किये विना कोई मुक्त नहीं हो सका! रज्जु में सर्प के समान यह विश्व आप में कल्पित है, कल्पित की सत्ता अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती, इसलिये मनसे जो कुछ मनन किया जाता है, श्रोत्र से जो सुना जाता है, त्वचा से जो स्पर्श किया जाता है, चक्षु से जो देखा जाता है जिह्वा से जो चक्खा जाता है, नासिका से जो सूंघा जाता है, और बुद्धि से जो विचारा जाता है वह सब आपका ही रूप है। हे प्रभो! मैं भी आप

का ही रूप हूं, आपके ही आश्रित हूं, आपके द्वारा ही रचीगयी हूं और आपके ही शरण में हूं, इसी लिये लोक में मुझे माधवी कहते हैं। हे संपूर्ण ज्ञानमय! हे स्थूलमय! हे अव्यय! आपकी जय हो! हे अनन्त! हे अव्यक्त! हे व्यक्तमय प्रभो आपकी जय हो! हे परात्पर स्वरूप! हे यज्ञपते! हे अनघ! आपकी जयहो! हे प्रभो! आप ही यज्ञ हैं आप ही वषट्कार हैं, आप ही ओंकार हैं और आप ही आहवनीयादि अग्नियां हैं! हे हरे! आपही वेद, वेदाङ्ग और यज्ञ पुरुष हैं और सूर्यादि गृह, तारे, नक्षत्र और संपूर्ण जगत् भी आप ही हैं! हे पुरुषोत्तम! हे परमेश्वर! मूर्त, अमूर्त, दृश्य, अदृश्य, जो कुछ मैंने कहा है और जो नहीं कहा, वह सब आपही हैं, इसलिये आपको नमस्कार है। वारम्वार नमस्कार।

नारद–हे ऋषियो! पृथिवी की स्तुति सुन कर धरणीधर भगवान् ने घर्घर शब्द से गर्जना की और फिर विकसित कमल के समान नेत्रों वाले उन महावराह ने कमलनी के समान पृथिवी को अपनी डाढ़ों से उठा लिया और कमलदल के समान श्याम और नीलाचल के समान विशाल काया वाले भगवान् रसातल से बाहर निकले। निकलते समय उनके मुख के श्वास से जो जल उछला, उसने जनलोक के रहने वाले, महातेजस्वी और निष्पाप सनकादि मुनीश्वरों को भिगो दिया। उनके खुरों से विदीर्ण हुए रसातल में जल बड़ा शब्द करता हुआ नीचे को जाने लगा और जन-लोक में रहने वाले सिद्ध गण उन भगवान् शूकर के श्वास वायु से विक्षिप्त हो कर इधर उधर भागने लगे, उसी समय भगवान् की खोज करता हुआ हिरण्याक्ष वहां जा पहुंचा और इस प्रकार कहने लगा–

हिरण्याक्ष–हे जलचर वराह! हे अज्ञ! रसातल वासियों के लिये विश्वसृष्टा की दी हुई इस पृथिवी को छोड़ दे, ऊपर मत लेजा, यदि यह पातालवासियों के वास करने के लिये न होती, तो रसातल में क्यों आ जाती? रसातलवासियों की वस्तु को तू ऊपर नहीं ले जा सका, हे सूकर आकृति वाले सुराधम मेरे देखते हुए तो इसको बिना युद्ध किये ले नहीं जा सका, तू हमारे सन्मुख युद्ध नहीं कर सका, छुप कर असुरों को मारता है, मूढ! तुझ में योग माया का बल है और थोड़ा सा सामर्थ्य है, मैं तुझे मार कर अपने सगे संबंधियों के शोक को दूर करूंगा। जब मेरे हाथ से छोडी हुई गदा से तेरा शिर कट जायगा और तू मर जायगा, तब तेरे लिये बलि लाने वाले ऋषि और देवता सब स्वयं ही निर्मूल हो जांयगे।

नारद–हे ऋषियो! दैत्यराज के ऐसे दुर्वचन सुन कर और उग्र डाढ़ों पर रक्खी हुई भूदेवी को डरी हुई जान कर सूकर भगवान् ने उसके वचनों पर कान न दिया, पृथिवी सहित जल्दी २ जल में से निकलने लगे। हिरण्याक्ष पीछे से 'निर्लज्ज है, कायर है!' इत्यादि कुवचन कहता हुआ चला आता था। पीछे दैत्य और आगे २ भगवान् इस प्रकार शूकर भगवान् वसुंधरा को जल में से निकाल लाये, अपनी शक्ति प्रदान करके उसको सब देवताओं के सामने जल पर स्थापित कर दिया। ऐसा देख कर ब्रह्मादिक देवताओं ने हिरण्याक्ष के देखते हुए ही भगवान् के ऊपर पुष्पों की वर्षा की और स्तुति भी की, जैसा कि मैं तुम से ऊपर कह आया हूं। पश्चात् भगवान् इस प्रकार कहने लगे:–

श्री भगवान्–हे अभद्र! सत्य है, हम जल-चर मृग हैं, तुम सरीखे ग्रामसिंहों को यानी कुकरों

को ढूंढते फिरते हैं, तुझ मृत्यु के पाश में बन्धे हुए के वचनों पर हम ध्यान नहीं देते! रसातल वासियों की धरोहर का हरने वाला, मैं निर्लज्ज तेरी गदा से भगा दिया हुआ भी खड़ा हुआ हूं, क्योंकि युद्ध में ठहरना ही पड़ेगा, बली से वैर करके जाऊं भी कहां? कहीं जाने को स्थान ही नहीं है। तू पदातियों के यूथपतियों में मुख्य है, वीरशिरोमणि है, मेरे जीतने के लिये शीघ्र प्रयत्न कर, मुझे मार कर अपने बान्धवों के शोक को दूर कर, जो अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण नहीं करते, वे सभ्य नहीं हैं किन्तु असभ्य हैं।

नारद-हे ऋषियो! भगवान् के इन वचनों से क्षुभित हो कर दैत्यराज सर्पराज के समान क्रोध में भर गया, जल्दी २ श्वास लेने लगा, इन्द्रियाँ फड़कने लगीं और उसने हरि के ऊपर गदा चलायी। शत्रु की चलाई हुई गदा के वेग को तिरछे हो कर भगवान् इस प्रकार बचा गये जैसे योगारूढ़ योगी मृत्यु को बचा जाता है। पश्चात् अपनी गदा लेकर भगवान् क्रुद्ध हो कर दांतों से होठ चबाते हुए, गदा को घुमाते हुए दैत्य के ऊपर दौड़े पश्चात् दोनों में पैंतरे बदल २ कर गदा युद्ध हुआ। गदाओं का घट २ शब्द दिशाओं में गूंज गया। कभी कलाई पर, कभी हाथ पर, कभी भुजाओं पर भी, कभी छाती पर, कभी जंघाओं पर गदा चलाई जाय, अपनी वारी से हरि और हिरण्याक्ष अपनी २ चोटों को बचा जाय। इस प्रकार बड़ी देर तक दोनों वीरों का युद्ध हुआ। अन्तरिक्ष में ब्रह्मादिक देवता अपनी शक्तियों सहित विमानों में बैठे हुए भगवान् और दैत्य का युद्ध देख रहे थे। कभी भगवान् के कभी दैत्य के हाथ से गदा छूट जाय, कभी भगवान् के अंग में और कभी दैत्य के अंग में गदा लग जाय इस प्रकार कभी भगवान् जीत जांय, दैत्य हार जाय, कभी दैत्य जीत जाय और भगवान् हार जांय, ऐसा देख कर ब्रह्मा जी कहने लगे:-

ब्रह्मा-हे देव! यह दैत्य आपके चरण सेवी देवताओं का, ब्राह्मणों का, गौओं का, निरपराध प्राणियों का अपराध करने वाला, भय देने वाला और पाप करने वाला असुर है, इसने मुझ से वर पाया है, ब्रह्मांडभर में इस का प्रतिपक्षी कोई नहीं है, यह अपना प्रतिरथ यानी सामने युद्ध करने वाला ढूंढता हुआ लोकों में पर्यटन करता है। इस मायावी, अभिमानी, निरंकुश दुष्ट के साथ हे देव! जैसे बालक सर्प के साथ क्रीडा करता है, तैसे क्रीडा न कीजिये किन्तु शीघ्र ही मार डालिये। हे देव! जब तक यह अपनी माया को पा कर बलिष्ट न हो जाय, उससे पहले ही हे अच्युत! इसे मार दीजिये! हे प्रभो! लोकों का नाश करने वाली यह घोरतम संध्या आ गयी है, हे सर्वात्मन्! देवताओं को जीत कराइये! अभिजित नक्षत्र भी आ गया है, यह काल शुभ है, इस मुहूर्त में इसको मार कर अपने भक्तों को शीघ्र तारिये!

नारद-हे ऋषियो! ब्रह्मा जी के ये वचन सुन कर भगवान् हंसने लगे। दोनों का युद्ध होता रहा, दैत्य ने बहुत शूरता दिखायी, परन्तु उस का उद्यम निष्फल हुआ। ऐसा देख कर उसने अपनी आसुरी माया फैलाई! जैसे पापी के सब उद्यम निष्फल होते हैं, इसी प्रकार उसकी माया भी भगवान् के ऊपर न चली। अन्त में उसने भगवान् के एक घूंसा मारा और भगवान् ने उसके कान में एक थप्पड़ मार कर उसको विना प्राण कर दिया। हे ऋषियो! तुम ने जो पूछा था कि हिरण्याक्ष और वराह भगवान् का युद्ध क्यों हुआ, उसका यह उत्तर मैंने तुम से कहा।

श्रीभगवच्चर्चा

तृतीय चर्चा।

पुंसवन विधि।

सुनी मरुद्गण कथा सुहानी।
पति सम्मति ले बोली रानी ॥ १ ॥
रीति पुंसवन व्रत की ब्रह्मन्।
विष्णु तोषिणी कहिये भगवन् ॥ २ ॥
कहा पुरोहित मन सुख मानी।
सुनो चित दे राजा रानी ॥ ३ ॥
शुक्ल मार्गशिर की पड़वा से।
नारि करे व्रत पति आज्ञा से ॥ ४ ॥
विप्रन पूछ समाहित करि मन।
सुने मरुद्गण जन्म सुपावन ॥ ५ ॥
दांत मांजकर सिर से न्हा कर।
पहिने अलंकार शुक्लाम्बर ॥ ६ ॥
पूजे प्रात पूर्व भोजन से।
लक्ष्मी विष्णु समाहित मनसे ॥ ७ ॥
नमस्कार के मंत्र उचारे।
पीछे पूजा में मन धारे ॥ ८ ॥

दो०-नमस्कार पूजन हवन, तीनों के शुचि मंत्र।
निम्नलिखे अनुसार हैं, पूजा जिनके तंत्र ॥ १ ॥

नमस्कारमंत्र।

अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते।
महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥ १ ॥
यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनौजसा।
जुष्ट ईशगणैः सर्वैस्तनोसि भगवान्प्रभुः ॥ २ ॥
विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे।
प्रीयेथां मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

पूजा मंत्र

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बलिमुपहराणीति ॥

इस मंत्र से प्रतिदिन विष्णु का आवाहन करके अर्घ्य, पाद्य, उपस्पर्शन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, विभूषण, गंध, पुष्प, धूप, दीप, उपहार आदि उपचार समाहित होकर देवे"

हवन मंत्र

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति।

"इस मंत्र से बचे हुए हविष् की अग्नि में बारह आहुति देवे"

रमा रमापति जग जग कर्ता।
वरदायक सुरनायक भर्ता ॥ १ ॥
करे नित्य दोनों का पूजन।
विश्व संपदा चाहे जो जन ॥ २ ॥
करे प्रणाम दंडवत प्राणी।
भक्ति भाव से संयत वाणी ॥ ३ ॥
मंत्र जपे दृगवार उपासक।
पढ़े स्तोत्र यह पातकनाशक ॥ ४ ॥
दोनों आप विश्व के कर्ता।
कारण पर पालक संहर्ता ॥ ५ ॥
प्रकृति सूक्ष्म माया यह माई।
शक्ति दुरत्यय वेद बताई ॥ ६ ॥
या देवी के आप अधीश्वर।
परम पुरुष सर्वज्ञ महेश्वर ॥ ७ ॥

इज्या तथा क्रिया यह माता।
आप यज्ञ भुक् अरु फलदाता ॥ ८ ॥

दो—व्यंजक गुणभुक् देव हैं, यह देवी गुण व्यक्ति।
सब के आत्मा आप हैं, देहादिक यह शक्ति ॥

नाम रूप से भाई भासत।
दोनों कूं हैं आप प्रकाशत ॥ १ ॥
तीन लोक के तुम पितु माता।
यथा आप सबके वरदाता ॥ २ ॥
तथा मुझे भी प्रभु वर दीजे।
पूर्ण मनोरथ मेरे कीजे ॥ ३ ॥
या प्रकार से स्तुति करि नारी।
पूजे रमा सहित असुरारी ॥ ४ ॥
दे उपहरण आचमन देवे।
पूर्ण प्रीति से श्रीहरि सेवे ॥ ५ ॥
भाव भक्ति से स्तुति उच्चारे।
दोनों मूर्ति चित्त में धारे ॥ ६ ॥
यज्ञशिष्ट ले सूंघे ताकूं।
पूजे फिर भी वरदाता कूं ॥ ७ ॥
पुनः भजे पति ईश्वर जानी।
परम भक्ति से नारि सयानी ॥ ८ ॥

दो—प्रेम शील पति पत्नि के, रहे सदा अनुकूल।
करे करावे कार्य सब, होय नहीं प्रतिकूल ॥ ३ ॥

किया पत्नि का अथवा पति का।
कर्म होय दोनों दम्पति का ॥ १ ॥
पत्नि अयोग्य किसी कारण से।
करे कर्म ताका पति मन से ॥ २ ॥
विष्णु व्रत निर्विघ्न निभावे।
भंग न ता में पड़ने पावे ॥ ३ ॥
विप्रन क्षीरवतांन जिमावे।
माल वस्त्र भूषण पहिरावे ॥ ४ ॥
पूजे दिन २ सहित नियम यम।
प्रेम भक्ति से विष्णु रमा सम ॥ ५ ॥
व्रत यह पूरा जब हो जावे।
देव देवि निज धाम पठावे ॥ ६ ॥
देवार्पित जो भोजन होई।
शुद्धि सिद्धि हित खावे सोई ॥ ७ ॥
या विधि द्वादश दिवस बितावे।
वर्ष एक विधि नियम निभावे ॥ ८ ॥

दो—वर्ष एक के अन्त में, आवे कातिक मास।
अन्त दिवस ता मासके, सती करे उपवास ॥ ४ ॥

करे स्नान दूजे दिन नारी।
यथापूर्व पूजे असुरारी ॥ १ ॥
पके दूध से चरू बनावे।
ताके मांही सर्पि मिलावे ॥ २ ॥
चरू सर्पि मिश्रित पति लेवे।
ताकी आहुति बारह देवे ॥ ३ ॥
द्वादशाक्षमवित् विप्र जिमावे।
आशिष तिनका शीश चढावे ॥ ४ ॥
करे नमन तिन शीश झुकाके।
खाय आप विप्राज्ञा पाके ॥ ५ ॥
सह बांधव आचार्य पुरस्सर।
बाकी बचे चरू कूं लेकर ॥ ६ ॥
मौन धारि पत्नी कूं देई।
चरू पुत्रदा खा सो लेई ॥ ७ ॥
व्रत यह हरि का धारे जो नर।
जो फल चाहे देवे ईश्वर ॥ ८ ॥

दो—करे यही व्रत नारि जो, पावे अचल सुभाग।
लक्ष्मी सुत यश विमल मति, भर्ता का अनुराग ॥

कन्या करे सुघड वर पावे।
विधवा करे सुखी हो जावे ॥ १ ॥
मृतसुत जीवित सुत हो नारी।
धन विहीन होवे धनधारी ॥ २ ॥

नारि कुरूपिनि होय सुरूपिनी।
रोगिनि नारी होय अरोगिनि ॥ ३ ॥
पढ़े कथा उत्सव दिन कोई।
तृप्ति पितृ देवन की होई ॥ ४ ॥
कथा मरुद्गण मंगलकारिणि।
नृप मैं कही अमंगल हारिणि ॥ ५ ॥
श्रद्धा से दोनों व्रत कीजे।
चिन्तायें सबही तज दीजे ॥ ६ ॥

निश्चय ईश्वर होय सहायक।
दो कुमार दम्पति सुखदायक ॥ ७ ॥
होय समर्थ कुमार न जबलौं।
मत जाओ वन दोनों तबलौं ॥ ८ ॥

दो०—घर में या वन में रहे, जे हैं भगवद्भक्त।
लेश नहीं है हानि यदि, होंय न विषयासक्त ॥ ६ ॥
जंगल दंगल एक से, दोनों मंगल रूप।
कृष्ण चरण अनुरक्त कूं, क्या जाड़ा क्या धूप ॥ ७ ॥

मुकदमा दीवानी।

(ले० भक्तरत्न मथुराप्रसाद जी)

बइजलास श्री ब्रजरानी राधिका जी श्याम दिल साकिन तन नगर—मुद्दई—नई छवि राधा जी—मुद्दआ इलहा——

दावा दिलापाने मन भर मुस्किान मिठाई—

अरजी दावा—गरीब परवर सलामत—

जनाबे आली—बयान नालिश यह है कि मुद्दई हजूर ब्रजरानी की नई छब मुद्दाइलहा के पास जाकर नौकर रहा। तनख्वाह यह करार पाई कि मुस्किान—मिठाई मिलती रहेगी। चुनाचे मैं बराबर खिदमत में हाजिर रहा लेकिन कुछ दिनों तो तनख्वाह मिली अब आठ पहर की तनख्वाह बाकी है। अदा नहीं की तलब करने पर लैतलाल किया गया ये ही वजह पैदाय बिनाय मुख़ा सिमत की हुई। लिहाजा उम्मेदवार कि मनभर मुस्कान मिठाई मये खर्चें दिलाई जावे।

दस्खत श्याम दिल मुद्दई

हक फियामजमून नालिश की तसदीक करता है——दस्खत ——

बाद रिपोर्ट सरिश्ता मुकदमा दर्ज नम्बर किया गया। और तारीख मुकर्रिर होकर समन बनाम मुद्दाइलेहा जारी हुआ—

तारीख पर फरीकैन हाजिर हुए।

बयान मुद्दई व हलफ कलम बंद किया गया।

बयान मुद्दई

नाम मेरा श्याम दिल वलद महादेव साकिन तन नगर घनश्याम—उम्र १६ साल पेशा सेवा सन्तान महात्मा व भक्तान।

मुझे मुद्दआइलेहा ने नौकर रक्खा। मुस्कान मिठाई तनख्वाह में मिलना करार पाया। खिदमत यह बतलाई गई कि हर वक्त हाजिर रहाकरो। मैं शबोरोज हाजिर रहा। मिस्ले साया पीछे २ फिरता रहा। कभी जुदा नहीं हुआ। पहले तो तनख्वाह रोजाना मिलती रही अब आठ पहर की तनख्वाह बाकी है बावजूद तकाजा अदा नहीं की वो दिलाई जावे। गवाहे सबूत नींद भूख प्यास नैन

हाजिर हैं। बाद तहकीकात दावा डिगरी फर्माया जाय और खर्चा दिलाया जाय।

दस्खत मुद्दई——

इजहार मुद्दआइलेहा।

नाम मेरा छवि साकिन प्यारी अंग मुद्दई को मैंने नौकर नहीं रक्खा। एक रोज मैं सखियों की छब के साथ किलोल कर रही थी इतने में श्याम की अवाज सुनाई दी उनकी तरफ निगाह उठाकर देखते ही उनका दिल चला आया और भिकारी की तरह पीछे पीछे चलने लगा। और अपनी गरीबी जाहिर करने लगा, उसकी गरीबी जानकर मेरे दिलमें दया आगई उसे कुछ दिलादिया। यह मेरे दर्वाजे पर पड़ा रहने लगा अब कई रोज से नज़र नहीं आया अब क्या भीक देने उसके घरपर जाना होता दावा गलत है।

रोयकार तनकीह

दो अम्र तनकीह तलब इस मुकद्दमे में हैं।

१. क्या मुद्दाइलेहा ने मुद्दई को नौकर रक्खा। जिम्मे मुद्दई

२ अगर नौकर रक्खा तौ किन शरायत पर और मुद्दई हाजिर रहा या क्या-

मुकदमा ८ तारीख को पेश हो फरीकैन को मय सबूत हाजिरी की हिदायत करदी गई।

बयान गवाहान मुद्दई

नाम मेरा नींद, साकित नैन नगर, पेशा आराम देना, जबसे मुद्दई मुदाइले के यहां नौकर रहा उस वक्त से मैं कभी उसके पास नहीं गई। यह दिन रात मुदायले के पास रहता था, दर्बार में हाजिरी साधता था।

बयान भूख सकने-उदर नगर, बाप का नाम अठरानल-पेशा, स्वाद लेना।

मुद्दई प्यारी की छबके पास दिनरात ऐसा मगन रहता था कि मुझे भूल ही गया।

बयान प्यास-वलद-गर्मी, साकिन-हलक (कंठ) पेशा-पीना-

मुद्दई ने मेरी कभी खबर न ली जबसे मुदायलह के नौकर रहा हमेशा उम्मेद्वार अधर मिठाई का रहता था।

बयान नैन गवाह मुद्दई।

नैन-वलद-दिमाग, साकिन-चेहरा-पेशा देखना, हमने मुद्दई को मुदाइलेहा के पास रहते दिन रात देखा है और मुद्दई मुझे भी मजबूर करता था कि हर वक्त मुद्दाइलेहा का देखाकरो इसलिये हम भी शबोरोज मुद्दआइलेहा की खिद्मत में हाजिर रहते थे:-

बयान तिरछी चितवन गवाह मुद्दई, साकिन प्यारी नैन, पेशा-वियोग में दुख और संयोग में सुख देना:-

मुद्दाइले ने मुझे प्यारे के पास भेजा था मैं उनके दिलको फौरन बुलालाई। श्याम के दिल को देखते ही प्यारी का अंग रोमाञ्चित होगया पसीना आगया, टकटकी लगाकर आँखें देखने लगी सुध बुध जाती रही, फिर प्यारी जी के मुखपर कुछ मुस्कान आई, मुद्दायलह ने तब खुश होकर कहा कि तुम हर रोज यहाँ आकर मन भर मुसकान पाया करो।

बयान प्यारी दिल गवाह मुद्दई

मैं खूब जानता हूं कि मुद्दई हरदम मुद्दायलेहा के पास हाजिर बाश रहता था, हम से तब मुलाकात हमेशा होती थी, मुद्दायलहा ने जिरह का सवाल किया उसके जवाब में बयान किया सखियां हरदम हाजिर नहीं रहती थी, मेरी जितनी ताक.

फियत उनको नहीं होसकती। मुद्दई की शहादत्त खत्म होकर मुद्दाइलेहाकी शहादत्त शुरु होती है–

बयान ललिता–सकने बरसाना उम्र १६ साल पेशा सेवा–

मैं एक रोज प्यारी जी के साथ विचर रही थी अचानक घनश्याम जी वहां आ पहुंचे और कुछ देर ललचाई हुई आँखों से देखते रहे प्यारी जी मेरी तरफ देखकर हंसी उन्होंने समझ लिया कि हमारी तरफ हंसी हैं। प्यारी ने हमारी तरफ देखकर कहा कि यहाँ रोज आया करो– बस इतनी बात हुई फिर कभी हमने मुद्दई को वहाँ नहीं देखा–

बयान विशाखा सखी गवाह मुद्दाइलेहा– (करीब २ बयान ललिता गवाह के मुताबिक है)

(तजवीज)

मुकद्दमा बहाजिरी फरीकैन पेश हुआ–

मुद्दई का यह दावा है कि मुद्दाइलेहा ने उसे नौकर रक्खा और मुद्दई ने हाजिर रहकर खिदमत की मनभर मुसकान मिठाई तनखा हमें बाकी है वो दिलाई जावें———मुद्दाइलेहा नौकर रखने से इनकारी है–

तनकीह तलब दो अम्र करार पाये।

१. आया मुद्दई को मुद्दालेहा ने नौकर रक्खा।
२. अगर रक्खा तो किन शरायत पर और मुद्दई हाजिर रहा या नहीं।

छः गवाह मुद्दई के गुजरे उनसे साबूत दावी हासिल होता है नींद भूख प्यास और नैन सेवा का हाल जाहिर करते हैं, तिरछी चितवन साफ बयान कर रही है कि वो मुद्दई को बुला कर लाई और मुस्कान मिठाई देने का वादा हुआ। अलावा इसके प्रियादिल बहुत साफ गवाही दे रहा है कि मुद्दई कभी गैर हाजिर नहीं रहा मुद्दाइलेहा के जो दो गवाह पेश हुए हैं उनसे भी दावी मुद्दई की ताईद होती है।

श्याम का प्रिया के पास जाना ललिता जाहिर कर रही है और प्यारी का हंसना और रोज़मर्रा हाज़िरी के लियेकहना।

विशाखा का बयान भी मुवैयदे दावी है इसलिये दावी मुद्दई के साबूत में कोई कलाम नहीं तिरछी चितवन गवाह के बयान से मुद्दई का बुलाया जाना नौकर रखाजाना अयाँ है और जिस्म में पसीना वगैरा अलामात प्रेम जाहिर होती हैं। इसके मुकाबले में बयान मुद्दाइलहा की कोई वकअत नहीं, न उसका इनकार काबिले तसलीम है।

लिहाजा हुक्म है कि दावा मुद्दई का डिगरी किया जाय औरखर्चा जिम्मे मुद्दाइलेहा आयद हो हुक्म फरीकैन को सुनादिया गया।

तारीख

दस्तखत हाकिम

अविनाशी-वैभव

(ले० श्रीसीतारामीय श्रीमथुरादास जी महाराज अयोध्या)

वैभव की कामना बड़ी बुरी होती है, मनुष्य वैभव प्राप्त करने की इच्छा पूर्ति के वास्ते अपना सर्वस्व बलिदान कर देता है, धन वैभव, जन वैभव बल, वैभव विद्या वैभव, यश वैभवादिक विविध प्रकार की नश्वर वैभवीय कामनाओं के फन्द में फंस कर जीवन होम देना पड़ता है।

परन्तु इस विनाशशील नश्वर वैभव की प्राप्ति के लिये लालायित जीव अन्त तक हाय हाय २ करता हुआ प्राण विसर्जन करता है तृष्णा तो शान्त होती ही नहीं है। जब तक मनुष्य यथार्थ सन्तोष प्राप्त नहीं कर लेता तब तक शान्ति देवी की सुखमय छत्र छाया परम दुर्लभ ही है। सर्वेश्वर प्रभु के शुभ चरणों में प्रेम करना ही सच्चे सुख का तथा सच्चे सन्तोष का प्रदाता है, जब तक परमात्मा के पाद पद्मों में पावन प्रेम नहीं हुआ है तब तक सच्चे वैभव को प्राप्त करना महान् असम्भव है। मनुष्य जब प्रभु प्रेम की प्राप्ति करता है तभी यथार्थ सन्तोष प्राप्त होता है तथा सन्तोष प्राप्त होने पर ही।

गोधन गजधन बाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवत सन्तोष धन, सब धन धूर समान॥

इस परम सत्यका साक्षात्कार होगा। भक्तों का वैभव अविनाशी है। प्रेमियों का ऐश्वर्य अनन्त है, अक्षय है, तथा अखूट है जैसे ईश्वर अनन्त ऐश्वर्यनिधि है वैसे ही उसके लाडिले भक्त भी अनन्त आनन्द सागर हैं, पूर्ण हैं, सन्तुष्ट हैं, निष्काम हैं। संसार के अनित्य सुखों का भोक्ता ही दुखी होता है, मान लिया जाय कि एक मनुष्य अपार धनपति हो गया, हर प्रकार के वैभव उसे सुलभ हो गये तो भी क्या? शास्त्र तो कहते हैं कि यह तो उसके पूर्व जन्मों की पुण्यमय कमाई है, तथा इस समय भी यदि वह पुण्य पथारूढ है तो वह आगे सुखी होगा परन्तु धन प्राप्त करके यदि वह विषय विलासी बन गया धर्महीन बन बैठा, तो आगे उसके वास्ते नरक तैयार है, उसका यह अनन्त वैभव दो दिन का छोटा तमाशा है अन्त में नारकी दुःखों से छुटकारा देने के वास्ते उसका धन कुछ भी काम न लगेगा वह अपने धन से न खुद खुशी हो सकता है तथा न अपने साथियों को सुखी बना सकता है, अर्थात् पाप का दण्ड उसे भोगना ही पड़ेगा अतः यह सांसारिक अनित्य वैभव सुख प्रद नहीं है परन्तु सुख की अपेक्षा विशेष दुःख दाता है। भले विषय वारुणी पीकर मतवाले हो आज यह बात न मानो पर अन्त में कुल मतवाली निकल जायगी तथा माथे हाथ दे रोना पड़ेगा।

नाशमान चीजों से अविनाशी सुख की चाहना करनी नितान्त मूर्खता है। याद रक्खो नाशवान् वस्तु से अक्षय सुख कभी नहीं मिल सकता है। अविनाशी सुख दाता तो केवल सर्वेश्वर श्रीराम जी ही हैं, उनके भक्तों का सुख अविनाशी है, यदि हमें अनन्त सुख की चाहना है तो अपने जीवन की प्रत्येक महा मूल्य घड़ियाँ उसी जगन्नियन्ता के स्मरण में ही बितानी चाहिये।

मानव देह देवताओं को भी दुर्लभ है; मानव जीवन की एक एक पल भी संसार के अनन्तानन्त वैभवों की अपेक्षा कहीं विशेष मूल्यवान है। हमारे पथ प्रदर्शक महात्मा लोग ठीक ही कह गये हैं कि–

सम्पति सारे जगत् की, स्वांसा सम नहीं होय।
सो स्वांसा सुभ भजन बिनु, तुलसी वृथा ना खोय॥

एक आदमी लगभग १००००००) दश लाख रुपया कमा कर विदेश से लौट कर अपने घर आता रहा बीच में समुद्र पड़ता था अतः उसे जहाज की मुसाफरी करनी पड़ी जहाज जब मध्य भाग में आया किसी कारण से टूट गया, देखते देखते लगा डूबने। उस समय उसके शिर भी मौत की घोर नौबत बजी लगा वह चिल्लाने तथा सब से कहा कि कोई मेरे प्राण बचा कर ये दशलाख रुपये ले लेवे परन्तु किसी ने मन्जूर न किया

आखिर डूब कर मर गया। एक छदाम भी काम न आया।

दूसरा एक आदमी अपनी कुल जायदाद, मकान, धन, मात्र सब कुछ बेच उसका एक हीरा मोल लेकर परदेश जा रहा था, लगा वह समुद्र तट पर उस हीरे को उछाल २ कर खेलने एकबार अकस्मात् वह हीरा पानी में जा गिरा, वह भी अन्धा हो कर गिरा हीरा के साथ ही समुद्र में उसे यह भी मालूम न हुआ कि मैं समुद्र के गंभीर तथा अथाह जल में बिना किसी के सहारे यों कूद कर क्या करूंगा? आखिर वह डूब कर मर गया उसका हीरा काम न लगा।

मनुष्य जब मृत्यु शय्या पर शयन करता है उस समय तीनों लोक का राज्य समर्पण करने पर भी उसके जीवन में एक बाल भी बढ़ नहीं सकता है, इसलिये विचार शीलों का यह ध्येय हो जाना चाहिये कि वे सांसारिक नश्वर सुख भोग की लालसा में न लटक कर अनन्त अविनाशी, अक्षय धन की प्राप्ति के वास्ते पूर्ण प्रयत्न शील बनें तथा मित्रों को बनावें।

धन तथा जगत् का वैभव मनुष्य को अधर्म की ओर ज्यादातर झुकाता है वह धन जो कि धर्म हीन के पास होता है सब को कष्टकर प्रतीत होता है परन्तु वही धन वैभव यदि किसी धर्म प्रेमी महानुभाव को प्राप्त होता है तो वह इहलोक तथा परलोक दोनों जगह सुखदाई बन जाता है, लाखों जीवों का हितकारी होता है। जो धन धर्म मार्ग में खर्च होता है वही धन सुखदाता है तथा जो धन पाप पथ में व्यय होता है वही दुखदाई बन जाता है। कुछ भी हो अन्त में तो कभी न कभी धन वैभव का नाश तो होगा ही लक्ष्मी तो परम चञ्चला है, स्थिर रहना तो वह जानती ही नहीं, आखिर जब यह चली जायगी तब वही दुःख दरिया सदा मौजूद ही है। अतः अनित्य सुखप्रद धन के मोह में फंसना अज्ञता है। धनी को अपने धन का बली को बल का वीर को वीरता का बुद्धिमानों को बुद्धि का घमण्ड नहीं रखना चाहिये, घमण्डी मनुष्य यहाँ घृणास्पद तथा परलोक में दण्डनीय समझा जाता है, फिर भी आखिर में तो अपनी कुल शानदारी छोड़नी ही पड़ती है। तब इतना घमण्ड क्यों? नम्रता, दया, उदारता, सन्तोष, धैर्य, आनन्द, धर्म, न्यायप्रियता, भगवत्प्रेम, विषय वैराग्यादिक पारमार्थिक सम्पत्ति ही अक्षय धन है, भक्तजन इसी धन को प्राप्त कर अलौकिक परमानन्द का उपभोग करते हैं, भले संसार की दृष्टि में भक्तगण गरीब तथा कंगाल प्रतीत होते हों परन्तु वास्तव में भगवत्कृपा से वे उस अप्रतिम शक्ति को प्राप्त करते हैं जिसके दिव्य प्रभाव से वे क्षणभर में क्या से क्या कर दे सकते हैं। अरे भाई! जिसके वश में सकल जगन्नायक प्रभु श्रीराम ही हैं वे कङ्गाल कैसे?

महर्षि भारद्वाज ने श्रीभरत जी का तथा अयोध्या निवासी लोगों का सत्कार करने के वास्ते किस अपूर्व शक्तिका परिचय दिया था। देखो श्री रामायण अयोध्या काण्ड। महर्षि वशिष्ठ जी ने विश्वामित्र जी के सत्कार करने के वास्ते किस अलौकिक प्रभाव को दिखलाया था, देखो श्री रामायण अयोध्याकाण्ड। महात्मा कबीर जी ने कैसे कैसे अनोखे परचे दिखाये थे, भक्त नामदेव ने कैसे अगणित सुवर्ण तथा मणिमाणिक्य विरचित पर्यंङ्क दिखलाये थे। देखो भक्तमाल, यह सब क्या है भक्तों का वैभव, ऐश्वर्य, अपरिमित प्रबल प्रताप।

यह प्रताप प्रभु की निर्हेतुकी दया से ही प्राप्त होता है, यदि इसको प्राप्त करने की आशा

रखते हो तो पहिले नश्वर सुखों की खोटी आशाओं का बहिष्कार करना पड़ेगा मन के साथ भीषण सत्याग्रह करना पड़ेगा। जगद्गुरु आचार्य श्रीरामानन्द स्वामी जी कहते थे कि हे लालची जीवो? मानलो कि तुम्हें सार्वभौम चक्रवर्ती पद भी प्राप्त हुआ, तुम देश दुनियां के शाहंशाह बन बैठे, परन्तु यह तो बताओ कि कितने दिनों के वास्ते दो दिन के लिये ही न? फिर भी यह तुम्हारा नश्वर वैभव जिसे तुम अपार समझ रहे हो वह तो ईश्वर के उस नित्य धाम के वैभव के छोटे से अंशांश के बराबर भी तो नहीं है, तब नाहक क्यों भूलते हो, प्रभु के श्रीचरणों की सेवा करके प्राप्त करलो न वह ईश्वरीय धाम का अनन्तानन्त अविनाशी दिव्य वैभव। गांगरौन गढ़ के महाराजा श्री पीपा जी जब आपके शरण आये तब आपने स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि "यदि तुम उस निखिल जगन्नियन्ता अखिलेश्वर अनन्त-ऐश्वर्यसागर प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के नित्य निकेतन (श्री साकेत धाम) का अविनाशी वैभव सुख चाहते हो तो इस जगत् के तमाम सुखों की स्पृहाओं का आत्यन्तिक विनाश करना पड़ेगा अन्यथा तुम उस दिव्य रसास्वादन को प्राप्त न कर सकोगे तथा न मेरा शिष्यत्व करने के ही अधिकारी समझे जाओगे।

जगद्गुरु का यह अमर आदेश श्रवण कर उसे हृदय में धारण कर पीपा जी भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी के शिष्य हुए, तथा इसी शरीर से भगवत्प्राप्ति रूप अमृतानन्द के भोक्ता बने।

श्रुति कहती है 'पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि, एक हिस्सा यह संसार का वैभव है। तथा तीन हिस्सा दिव्य धाम का अक्षय वैभव है गोस्वामी तुलसीदास जी भी लिखते हैं।

जो आनन्द सिन्धु सुखरासी। सीकरते त्रयलोक सुपासी॥

पाठको! क्या सोचते हो आकाश पाताल का अन्तर है कि नहीं? कहां यहां का तुच्छ अनित्य सुखाभास, तथा कहां वह नित्य, अखण्ड एकरस अपार आनन्द का सागर, सजग हो जाओ, होश में आजाओ, गफ़लत छोड़ो अपने घर का सीधा रास्ता लो। मत भटको भवनिधि के भयंकर घोर जंगल में, ढूंढो उस परमेश्वर के नित्य धाम का सीधा रास्ता कूद पड़ो आंख मींच कर प्रभु के प्रेमार्णव में, देखो तुम्हें भी सरलता से प्राप्त हो जाता है वह दुर्लभ सुख, अनन्त ऐश्वर्य, अखूट धन, अक्षय निधि तथा परम सुखमय अविनाशी वैभव।

लाल।

(रचयिता पं० बाबूलाल जी भार्गव)

धो धो करके कलुष कालिमा, निज जन की कहलाते 'श्याम'।
　　दुःख दूर कर कर के उनका, 'हरे' नाम पाया अभिराम॥
नहीं चाहता कलुष धुलाना, और न चाहूं क्लेश-विनाश।
　　'लाल' रहो तुम सदा प्रेम-रंग, रंगा देखने की मम आश॥

कर्तव्य परायणता।

(ले॰ प्रभुदत्त ब्रह्मचारी भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी)

जीवन संग्राम में अनेकों वारों (हमलों) को सहते हुये विजयाभिलाषी मनस्वी के मन में कायरता के अंकुर प्रायः न भी देखे जाते हैं, तथापि आत्मजयी प्रबल पराक्रमी उद्भटसाहसी विरल ही वीर ऐसी कसोटी पर अपना गुण गौरव प्रगट करते हैं। बड़े २ पराक्रमशाली धर्मके पताका रूप होते हुये भी, दैव के विपरीत गुण प्रगट करने पर अपने कर्तव्य कठोर हृदयों को आश्वासन देने में विफल हो जाते हैं! यह प्रभाव मथनशील काल का है जो बड़े २ धैर्यधुरीण महापुरुषों को भी समय २ पर अपने पद से च्युत कर देता है। दैव के विपरीत होने पर भी, लौकिक प्रवादों को सहन करते हुये, अनवरत संकट धारा के वेग को भी न गिनते हुये धीर मनस्वी अपने कृत्य को नहीं त्यागते। जीवन का यही मुख्य उद्देश्य है कि अपने नियमित कर्म को सदा सर्वदा दृष्टि पथ पर रखना। उन्नति की सर्वप्रथम सीढ़ी है तो यही है। जीवन की गहन व जटिल समस्याओं को हल करने का यही बीज मन्त्र है। लक्ष्य प्राप्ति का यही परम साधन है। जिस अवस्था में जिस व्यक्ति का जो मुख्य कर्तव्य निर्धारित है उस अवस्था में उस व्यक्ति को उस कर्तव्य के पालन में यत्किंचित् भी अवहेलना न करना ही उसकी सार्थकता है! कर्तव्य के निश्चय में शास्त्र और गुरुजनों का आदेश ही प्रमाण रूप है। शास्त्रों में कर्तव्याकर्तव्य की विवेचना विस्तृत रूप से की गई है परन्तु पूर्णविद्वत्ता के बिना शास्त्रोक्त कर्तव्य का निर्णय करना जन साधारण के लिये कठिन ही नहीं असम्भवसा प्रतीत होता है। ऐसी परिस्थिति में सुयोग्य गुरुओं के चरण ही शरण हैं। कर्तव्य भी दो प्रकार के होते हैं। १ सामान्य २ विशेष। सामान्य कर्तव्य प्रायः सभी को ज्ञात होते हैं। विशेष कर्तव्य के ज्ञान के लिये शास्त्र, गुरु की शरण लेना आवश्यक होता है! परायणता तत्परता को कहते हैं। कर्तव्य को अपनी दृष्टि में रखते हुये निरन्तर उसके पालन में कटिबद्ध रहना ही कर्तव्य परायणता है। जिन महानुभावों ने अपने कर्तव्य को दृष्टिपथ से च्युत नहीं किया वे ही अभीष्ट की सिद्धि में कृतकार्य हुये हैं। संसार में आज उनके जीवन की प्रत्येक घटना आदर्श रूप है। सहस्रों मानवों की जीवनोन्नति आज उनके ही जीवनाधार का फल है।

यह कहना अत्युक्ति न होगा कि जो अपने कर्तव्य में प्रमाद नहीं करता वह सर्वोन्नत पद को भी हस्तगत कर सकता है। जीवन में जितनी न्यूनता है सब कर्तव्य प्रमाद के ही कारण से है। मानवी जीवों को इस प्रकार के उपदेश के लिये कीट, पतंग, पशु आदि भी कारण भूत हो हैं। सृष्टि के तुच्छ से तुच्छ जीव भी निश्चेष्ट न होकर कर्तव्य की ओर अनवरत प्रवाह से बह रहे हैं! पिपीलिका दिन रात घोर परिश्रम करके अपने घर को अन्न से पूर्ण करती है। इनके घरों में दस २ सेर अन्न संचित पाया जाता है। पक्षिसमूह प्रातःकाल की प्रभा को देख कर देशान्तर में उदर पूर्ति रूप कर्म के लिये तुरन्त प्रवृत्त होते हैं। इसी से प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जीव का कर्तव्यता से

नैसर्गिक सम्बन्ध है। देहधारी हो कर निष्क्रिय होना दुर्लभ है। भगवद्वचन से यह स्पष्ट ही है कि-

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वं प्रकृतिजैर्गुणैः॥

जब प्रकृति के बल से अवश ही कर्म करना पड़ता है तो उसका निश्चय कोई मुख्य उद्देश्य है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रत्येक व्यक्ति का स्वकर्तव्य परायण होना परमावश्यक है। फल की असम्भावना होने पर भी कर्तव्य कर्म की उपेक्षा न करना ही श्रेय है। दैव के प्रतिकूल होने पर भी कि कर्तव्य विमूढ न होना परम गौरव है। इसी की पुष्टि में किसी कवि की सुन्दर रचना है कि:-

पराङ्मुखेऽपि दैवेऽत्र कृत्यं कार्यं विपश्चिता।
आत्मदोषविनाशाय स्वचित्तस्तम्भनाय च॥

अर्थ-दैव के प्रतिकूल होने पर भी विद्वान् को अकर्मण्यता दोष के नाश के लिये तथा चित्त के स्तम्भन के लिये (विषम समय पर भी कर्तव्य को निराश होकर न करने से मन में यही शंका रहती है कि सम्भव है करते तो ऐसा न होता) कर्तव्य कर्म को करना ही चाहिये।

कर्तव्य शील धैर्यवान् पुरुषों को विजय लक्ष्मी स्वयं खोजती ही रहती है। किसी ने क्या ही सुन्दर कहा है:-

उत्साह सम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ निश्चयं च लक्ष्मी स्वयं मार्गति वासहेतोः॥

निज कर्तव्य में उत्साह युक्त, आलस्य रहित, कर्तव्य विधि को भली भांति जानने वाले, विषयों में आसक्ति रहित, शूरवीर, कृतज्ञ, दृढ निश्चय वाले मनस्वी को वास के लिये लक्ष्मी स्वयं खोजती है। जिस महापुरुष ने इस परम उद्देश्य की पूर्ति में अपना जीवन समर्पण किया है वही पुण्य भाजन है। संसार में कितने भी महापुरुषों के जीवन आदर्श रूप हैं सब ही अपने कर्तव्य पालन में दृढ़ विजयी हुये हैं। इस में संशय नहीं जो करेगा वह भरेगा। धैर्य पूर्वक किसी भी कर्तव्य को दृढ़ निश्चय से करने से उसका परिणाम अवश्य ही सफली भूत होगा। प्रियपाठकवृन्द ? आप आज ही से अपने कर्तव्य में दृढ़ता से परायण हो जाइये, धैर्य को सदा साथ रखिये। मनुष्य के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है केवल कर्म की अपेक्षा है। जो दस वर्ष पहले असम्भव था कर्मवीर वैज्ञानिकों ने आज उसे लोक प्रत्यक्ष कर दिखाया। अतः इस कर्तव्य परायणता को सर्व सिद्धि का मूल समझ कर दृढ़ता पूर्वक करना ही जीव मात्र का कर्तव्य है।

अथ आर्तत्राणपरायणाष्टादशकम्।

प्रह्लाद प्रभुरस्ति चेत्तव हरिः सर्वत्र मे दर्शय।
स्तम्भे चैनमिति ब्रुवन्तमसुरं तत्राविरासीद्धरिः॥
वक्षस्तस्य विदारयन्निजनखैर्वात्सल्यमावेदयन्
नार्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः

हे प्रह्लाद यदि तेरा प्रभु हरि सब जगह है तो मुझे स्तंभ में दिखला, प्रह्लाद के प्रति हिरण्यकशिपु के ऐसे कहने पर स्तम्भ में ही प्रगट हुवे हरि अपने नखों से उस असुर के हृदय को फाड़ते हुवे वात्सल्य भाव दिखाते हुवे वह दुःखितों की रक्षा करने

वाले भगवान् नारायण मेरी गति हों ॥ १ ॥

श्रीरामात्र विभीषणोयमधुना त्वार्त्तो भयादागतः
सुग्रीवानय पालयेदमधुना पौलस्त्यमेवागतम् ॥
एवं योऽभयमस्य सर्वविदितंलंकाधिपत्यंददा -
वार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः

हे श्रीराम जी रक्षा करो, यह विभीषण इस समय दुःखित हुआ भय से आया है, हे सुग्रीव ले आओ मैं शरण में आए हुए विभीषण की इस समय रक्षा करूंगा इस प्रकार जिसने विभीषण को अभय कर लंका का राज्य दिया यह सभी जानते हैं, वह आर्त्तत्राण परायण भगवान् नारायण मेरी गति होवे ॥ २ ॥

नक्रग्रस्त पदं समुद्यतकरं ब्रह्मेश देवेश मां ।
पाहीति प्रचुरार्त्तराव करिणं देवेश शक्रीश च
मा शोचेति ररक्ष नक्रवदनाच्चक्रश्रिया तत्क्षणा-
दार्त्तत्राण परायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः

ग्राहने पकड़ा है पैर जिसका उठा है सूंड जिसका, हे ब्रह्मेश, हे देवेश मेरी रक्षा करो हे देवेश हे शक्रीश, इस प्रकार घोर आर्त्तनाद करने वाले हाथी को शोच मत कर ऐसे कहकर उसी समय सुदर्शन की धार से ग्राहको मारकर उसके मुखसे बचाया वह आर्त्तत्राण परायण भगवान् नारायण मेरी गति हो ॥ ३ ॥

हा कृष्णाच्युत हा कृपाजलनिधेहापाण्डवानांगते
क्वासि क्वासि सुयोधनादवगतां हा रक्षमां द्रौपदीं
इत्युक्तोऽक्षयवस्त्ररक्षिततनुं योऽरक्षदापद्गणा
दार्त्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः

दुःख में द्रौपदी ने हा कृष्ण ! हा अच्युत ? हा कृपा के सागर ! हा पाण्डवों की गति कहां हो कहां हो, दुर्योधन से अपमानित मुझ द्रौपदी की रक्षा करो, इन सम्बोधनों से भगवान् को पुकारा जिसने आपत्ति में द्रौपदी का चीर बढ़ाकर उसके शरीर की रक्षा की वह आर्त्तत्राणपरायण भगवान् नारायण मेरी गति हो ॥ ४ ॥

यत्पादाब्जनखोदकं त्रिजगतां पापौघविध्वंसनं
यन्नामामृतपूरणं च पिबतां सन्तापसंहारकम् ॥
पाषाणश्च यदंघ्रितो निजवधूरूपं मुनेराप्तवा -
नार्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः

जिसके चरण कमलों का जल तीनों लोकों के पाप समूह को नाश करने वाला है, जिसके नाम रूपी अमृत पीने वालों का सन्ताप कटता है, और जिसके चरणस्पर्श से पाषाण भी मुनि के पत्नीभाव को प्राप्त हुआ, वह आर्त्तत्राण परायण भगवान् नारायण मेरी गति होवे ॥ ५ ॥

यन्नाम श्रुतिमात्रतोऽपरिमितंसंसारवारांनिधिम्
त्यक्त्वागच्छतिदुर्जनोपिपरमंविष्णोःपदंशाश्वतम्
तन्नैवाद्भुत कारणं त्रिजगतां नाथस्य दासोस्म्यहम्
आर्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः

जिसके नामके श्रवण मात्र से अनन्त संसार समुद्र को त्याग कर दुर्जन भी विष्णु के नित्य परम धाम को पहुंचता है। यह कोई आश्चर्य नहीं, त्रैलोक्य नाथ का मैं दास हूं वह आर्तत्राण-परायण भगवान् नारायण मेरी गति हो ॥ ६ ॥

पित्राभ्रातरमुत्तमाङ्कगमितं भक्तोत्तमं यो ध्रुवं ।
दृष्ट्वा तत्सममारुरुक्षुमुदितं मात्रावमानं गतम् ॥
योऽदात्तं शरणागतं तुतपसा हेमाद्रि सिंहासनं ।
आर्त्तत्राण० ॥ ७ ॥

पिता से भाई उत्तम को गोद में बैठाये हुये

को देखकर प्रेम से उसके साथ बैठना चाहने वाले, माता से अपमान किये हुये, तप करके शरण में आये हुये, भक्तों में श्रेष्ठ ध्रुव को जिसने स्वर्ण का सिंहासन दिया वह आर्त त्राण परायण भगवान् नारायण मेरी गति हो ॥ ७ ॥

नार्थेतिश्रुतयो न तत्त्वमतयो घोषस्थिता गोपिका
जारिण्यः कुलजातिधर्म विमुखा अध्यात्मभावं ययुः
भक्तिर्यस्य ददाति मुक्तिमतुलां जारस्य यः सद्गतिः
र्हार्त्तत्राण० ॥ ८ ॥

वेद जिसके तत्त्व को न जानते हुये नेति नेति कहते हैं, तथा जिससे कुल, जाति, धर्म विमुख जारिणी ग्रामीण गोपिका अध्यात्मभाव को प्राप्त हुई, जिसकी भक्ति अतुल मुक्ति को देती है, जो जार को भी सद्गति देने वाले हैं वह आर्त त्राण परायण भगवान् नारायण मेरी गति हो ॥ ८ ॥

क्षुत्तृष्णार्त्तसहस्त्रशिष्यसहितं दुर्वाससं क्षोभितम्
द्रौपद्या भयभक्तियुक्तमनसा शाकं स्वहस्तार्पितम्
भुक्त्वाऽतर्पयदात्मवृत्तिमखिला मावेदयन् यः पुमा
नार्त्तत्राण० ॥ ९ ॥

भूख और प्यास से दुःखित सहस्त्र शिष्यों सहित क्षोभित हुये दुर्वासा को, द्रौपदी के द्वारा भय और भक्ति युक्त मनसे अपने हाथों से अर्पण किये गये शाक को खाकर जो पुरुष सम्पूर्ण आत्मवृत्तियों को जनाता हुआ, तृप्त करता भया, वह आर्तत्राण परायण भगवान् नारायण मेरी गति हो ॥ ९ ॥

अपूर्ण

शक्ति-स्तुति ।

(ले० महाकवि पु० प्रतापनारायण जी जयपुर)

आदिशक्ति की महाशक्ति को नमस्कार है बारंबार ।
भारत का कल्याण करे वह पहना उसे शक्ति-जय-हार ॥ टेर ॥

महिमामयि ! हम कैसे गावें तेरी गुण-गरिमा का गान ।
हममें भरे हुए हैं केवल अल्प बुद्धि–विद्या–बल-ज्ञान ॥
ऐसी अद्भुत क्षणप्रभाक्ष्वर, जो है अचला प्रभा-निधान ।
विजय चाहते हैं हम पाना होकर लघु खद्योत-समान ॥
तूही है बस करने वाली प्राणों में भी असु-सञ्चार ।
आदिशक्ति की महाशक्ति को नमस्कार है बारंबार ॥ १ ॥

जिसका अंकुर परब्रह्म है, हर-विधि दो दल हैं सुकुमार ।
हैं जिसके चौदह लोकों की शाखाएं शोभा आगार ॥
सुर–नर–किन्नर–यक्ष-निशाचर और चराचर नानाकार ।
हैं जिसके फल-फूल अनोखे रंग-बिरंगे, अपरम्पार ॥
ऐसे एक विचित्र वृक्ष का तूही तो है मूलाधार ।
आदिशक्ति की महाशक्ति को नमस्कार है बारंबार ॥ २ ॥

तू कर सकती धनी दीन को पलमें महाधनी को दीन ।
ऐसा कोई नहीं, नहीं है जो तेरी माया में लीन ॥
तेरे करुणा-वरुणालय ‡ में रहती मन्जु मुक्ति की मीन ।
तेरे हैं उपमेय सभी, तू है सदैव उपमान-विहीन ॥
तेरे द्वारा ही होते हैं इस सारे जगके व्यापार ।
आदिशक्ति की महाशक्ति को नमस्कार है बारंबार ॥ ३ ॥

वृष्टि-सृष्टि को करती तेरी दयादृष्टि बन मेघाकार ।
निराकार होकर भी तो तू हमें दीखती है साकार ॥
नभमें नहीं दीखाई देते ये तारे हैं तेजागार ।
तेरी महाकीर्त्ति के हैं ये चारु चिन्ह हैं गोलाकार ॥
तेरे बल से नाच रहे हैं विश्व † विश्वपति ✠ विश्वाधार ‡
आदिशक्ति की महाशक्ति को नमस्कार है बारंबार ॥ ४ ॥

⊛ बिजली, ‡ समुद्र, † संसार, ✠ महादेव, ‡ महाविष्णु,

ईश्वर।

[ले० श्री यमुनाप्रसाद जी श्रीवास्तव]

लोगों को यह वहम हो गया है कि ईश्वर कहीं नहीं है परन्तु सच बात तो यह है कि वह सब जगह मौजूद है और सर्वव्यापक है–

'ग़ैर के पास यह अपना ही गुमां है कि नहीं।
जल्वा गर यार मेरा, वर्ना कहाँ नहीं है॥'
'घट में है सूझत नहीं लानत ऐसे जिन्द।
नानक या संसार को हुआ मोतियाबिन्द॥'
'जले विष्णुः स्थले विष्णुः विष्णुः पर्वत मस्तके।
ज्वालमाला कुले विष्णु सर्वं विष्णुमयं जगत्॥'

'व्यापक ब्रह्म अखंड अनन्ता।
अखिल अमोघ एक भगवन्ता॥
सोई सच्चिदानन्द घनश्यामा।
अज विज्ञान रूप गुण धामा॥
अगुण अदृश्य गिरा गोतीता।
समदर्शी अनवद्य अजीता॥
निर्गुण निराकार निर्मोहा।
नित्य निरंजन सुख संदोहा॥

यह संसार रूपी खिलौने से खेलना और ब्रह्मा विष्णु महेश आदि को नचाता है।

'जग पेखन प्रभु देखन हारे,
विधि हरि शंभु नचावन हारे॥'

यह मोक्ष का दाता और सब के ऊपर माया का स्वामी है।

'बंध मोक्षप्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव।'

और प्रकृति से परे सब के हृदय में निवास करने वाला चेष्टा रहित परब्रह्म परमात्मा है। उसे माया और मोह नहीं व्यापता।

प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी।
ब्रह्म निरीह विरज अविनाशी॥
यहाँ मोहकर कारण नाहीं।
रवि सन्मुख तम कबहुं न जांही॥

इस प्रकार एक दृष्टि से ईश्वर सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सत्य-चित् आनन्द अकर्मकृत आदि है और दूसरी दृष्टि से वह सब गुणों से परे है। इसीलिये उसे निर्गुण कहते हैं। बिना 'निर्गुण' की उपासना के जीवन मुक्ति का सुख प्राप्त नहीं होता यथा गीता में एक श्लोक आया है और वह यह है।

'शास्त्राणि पठते नित्यं नाना देवान् प्रपूजयेत्।
आत्मज्ञानं विना पार्थ सर्वं कर्म निरर्थकम्॥
निर्गुण रूप अत्यन्त सुलभ है।

'निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण न जाने कोय॥'

उसकी (अर्थात् निर्गुण की) उपासना भी सीधी-सादी है। और वह यह है।

'कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिर सुमिरि भव उतरो पारा॥'

लोमश मुनि के शब्दों में निर्गुण ब्रह्म की व्याख्या इस प्रकार है।

अज अद्वैत अगुण हृदयेशा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा।
अनुभवगम्य अखंड अनूपा॥
मन गोतीत अचल अविनाशी।
निर्विकार निरवधि सुखराशी॥
'सो तैं तोहि ताहि नहिं भेदा।
वारि बीचि इव गावहि वेदा॥'

भावार्थ

निर्गुण परब्रह्म परमात्मा जन्म रहित, अद्वैत, निर्गुण और सबके अंतःकरण में स्थित है वह प्राण आदि कलाओं से रहित, निरीह निराकार और बुद्धि आदि इन्द्रियों के विषय से परे होने के कारण अनुभव से जानने योग्य और देश काल का निश्चय न होने के कारण अखण्ड और अनुपम है अर्थात् उसकी उपमा और प्रमाण कुछ नहीं है वह स्वयं अपना आप प्रमाण है वह मन और इन्द्रियों से परे निर्मल, नाश रहित, विकार रहित अवधि रहित और आनन्द स्वरूप है। वह (तत्वमसि) तू ही है' तुम में और उसमें कोई भेद नहीं है। महात्मा कबीर साहब ने इसकी पुष्टि की है और कहा है:-

'तत्वमसि' इनके उपदेशा। सो उपनिषद् कहे संदेशा।
उ निश्चय उनके बड़भारी। ताहि की वरन कहै अधिकारी॥
परम तत्व का निज परमाना। सनकादिक नारद सुखमाना॥
याज्ञवल्क्य जनक संवादा। दत्तात्रय वही रस स्वादा॥
वही वशिष्ठ राम मिल गाई। वही कृष्ण ऊधो समझाई॥
वही बात जो जनक दृढ़ाई। देह धरै विदेह कहाई॥

भावार्थ

'तत्वमसि' तू वह है अर्थात् जो जीव है वही ईश्वर परब्रह्म परमात्मा है। वह स्वयं अपना प्रमाण है सनक सनन्दन सनत्कुमार ने इसी में सुख माना था, याज्ञवल्क्य और जनक के संवाद में इसी का जिक्र आया था, दत्तात्रय ऋषि ने इसी का स्वाद चाखा था, राम और वशिष्ठ ने इसी राग को अलापा था, और श्रीकृष्ण जी ने ऊधो को यही समझाया था, और इसी के बल से राजा जनक शरीर रहते हुये विदेह कहलाये थे।

देखिये! समुद्र का प्रवाह कितना बड़ा है उसकी धारा में सैकड़ों जहाजें, अग्निबोटें नावें आदि चलती हैं सहस्त्रों ह्वेल लाखों मछलियां और करोड़ों जीव जन्तु आदि पाये जाते हैं। चट्टानों पर लाइट हाउस और किनारों पर बन्दरगाहें आदि बनी हैं जिनमें लाखों मनुष्य काम करते हैं। परन्तु इसी समुद्र के जल को यदि लोटे में भर देवें तो उसमें न जहाज, अग्निबोट नावें आदि दिखाई देवेंगी, न ह्वेल, मछलियाँ और जीव जन्तु आदि पाये जावेंगे और न लाइट हाउस बन्दरगाहें और काम करते हुये मनुष्य दिखाई देवेंगे।

वास्तव में जो जल समुद्र में है वही लोटे में है परन्तु समुद्र का प्रवाह बड़ा है और लोटे में केवल उसका अंश है।

जिस प्रकार दोनों जलों के एक होने में संदेह नहीं है उसी प्रकार ईश्वर और जीवात्मा के एक होने में सन्देह नहीं है। अतः जीवात्मा परमात्मा से भिन्न नहीं है। कहा भी है:-

श्वांसहि श्वांस चलै जब आपहि,
है सो अखंड टरै नाहि टारो।
बाहर भीतर है भरपूर,
सो ढूंढत है कहं, नाहि है न्यारो॥
चरणदास गुरु भेद दियो,
भ्रम दूर भयो, जो हतो अति भारो।
दृष्ट अदृष्ट जो राम को देखत,
राम भयो पुनि देखन हारो॥

[२]

शरीर और जीवात्मा दो भिन्न पदार्थ हैं। शरीर जड़ और नाशवान् है। जीवात्मा चैतन्य और अविनाशी है। शरीर घर है और जीवात्मा उसमें प्रकाश करने वाला दीपक है। शरीर और जीव के संयोग को जीवन और वियोग को मरण

कहते हैं। जब जीव शरीर में प्रवेश करता है तब जन्म लेना और जब वह उसे छोड़ कर चला जाता है तब मरना कहते हैं।

जीव जिन २ शरीरों में प्रवेश करता है उन्हीं २ शरीरों के नाम से पुकारा जाता है, भेद आत्मा का नहीं वरन नाम और रूप का होता है। नाम और रूप दोनों मिथ्या हैं इनसे दृष्टि हटाली जावे तो शुद्ध चेतन आत्मा रह जाता है।

यथा अनेकन रूप धरि नृत्य करे नट कोय।
सो सो भाव दिखावही आपहि होय न सोय ॥
कोइ सत्य कहै कोइ झूठ कहै कोइ युगल प्रबल कर मानै
तुलसीदास परहरै तीन भ्रम जब आपहि पहिचानै ॥

पिता से पुत्र उत्पन्न होता है परन्तु पिता और पुत्र में एक ही आत्मा है। आत्मा के विचार से पिता पुत्र है। और पुत्र पिता है।

अतः शरीरों से सम्बन्ध जोड़ना और किसी को अपना पुत्र किसी को अपना भाई किसी को अपनी स्त्री किसी को अपनी माता और किसी को अपनी बहिन मानना और उनसे स्नेह करना मूर्खता है। स्नेह तो अपने शरीर से भी नहीं करना चाहिये। स्नेह करने योग्य केवल अपना जीवात्मा है। यही निर्गुण परब्रह्म परमात्मा है इसी को ईश्वर कहते हैं।

तुमही घट बोलत, तुमही डोलत तुम ही हो कर्तार।
तुमही खवावत पानि पियावत मैं मन करी विचार ॥
तुमही ब्रह्मा विष्णु महेश्वर तुमही योग पसार।
तुमही सन्तन के मन मानी हो तुम ही निर्गुण निरंकार ॥

जगत् ईश्वर से भिन्न नहीं है। जन्म मरण सम्पत्ति विपत्ति स्वर्ग नरक आदि सांसारिक भावनाएं भ्रममूलक हैं। स्वर्ग अथवा नरक कहीं नहीं है। कर्म अथवा काल कुछ नहीं है। कोई न मरता है न जीवन ग्रहण करता है। ये सब भावनाएं अज्ञान वश उठती हैं।

जन्म मरण जंह लगि जग जालू।
सम्पति विपति कर्म अरु कालू ॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू।
स्वर्ग नरक जहं लगि व्यवहारू ॥
देखिय सुनिय गुनिय मन मांही।
मोह मूल परमारथ नाहीं ॥

जिस प्रकार स्वप्नावस्था में हाथी की इच्छा होते ही हाथी आजाता है, तैरने की इच्छा होते ही नदी नाले तालाब आदि लहरें मारने लगते हैं और बात की बात में संपूर्ण सामग्री इकट्ठी होजाती है। और वह भी कहीं बाहर से नहीं आती वरन भीतर ही भीतर स्वप्न भोक्ता के मनकी फुरन से उत्पन्न होती है उसी प्रकार यह जगत भी ईश्वर की कल्पना मात्र से उत्पन्न होता है।

जिस प्रकार स्वप्न के जीव कल्पित और मिथ्या होते हैं उसी प्रकार यह जगत् और उसकी संपूर्ण सामग्री भी कल्पित और मिथ्या है।

हमने भ्रम से जीवात्मा का गौरव और प्रतिष्ठा शरीर को दे दी है और शरीर को आत्मा में आरोपित करदी है। यथार्थ में हमारे हृदय स्थल जीवात्मा के सिवाय कहीं कुछ नहीं है।–

साधो! हर में हर को देखा।
आपहि माली आप बगीचा आपहि सींचन हारा।
आपहि कली आपही फूला आपहि सूंघन हारा ॥
आपहि दुनियां आपहि दौलत आपहि माल खजाना।
आपहि लूटे और लुटावे हाथ लिये इक प्याला ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो घटहि में ठाकुर द्वारा ॥

कबीर जिसको खोजता पायो सोई ठौर।
सोई फिर कै तू हुआ जिसको कहता और ॥
कबीर वृक्षा पूछै बीज से, बीज वृक्ष के मांहि।
जीव जो ढूंढै ब्रह्म को ब्रह्म जीव के मांहि ॥

कबीर आदिहती सब आपमें सकल इती तामांहि ।
ज्यों तरुवर के बीज में डारपात फूल छांहि ॥
हेरत हेरत हेरिया रह्यो कबीर हिराय ।
बुन्द समानी सिन्धु में सो कत हेरी जाय ॥

ईश्वर एक है और एक रंग है, निर्विकार और अक्षय है। उसमें रूपान्तर नहीं होता और वह घटता-बढ़ता भी नहीं, लेकिन इसपर भी आश्चर्य की बात यह है कि वह घट घट में इस तरह प्रकट होता है जिस तरह एक सूर्य का प्रतिबिम्ब सैकड़ों जलाशयों में दिखाई देता है।

'एकमेव द्वितीयं नास्ति ।'

और:-

मोहन मूरति श्याम की, अति अद्भुत गति जोइ ।
बसत सुचित अन्तर तऊ, प्रतिबिम्बित जग होई ॥

और भीः-

ये एकताई ये बकरंगी, तिस ऊपर यह क़यामत है।
न कम होना न बढ़ना और हजारों घट में बटजाना ॥

परंतु भक्ति के प्रिय पाठको ! आपको इसका विश्वास नहीं है, अतः इसी विश्वास को दृढ़ कीजिये। और सब जगत में अपनी ही आत्मा को देखिये किसी को अपना और किसी को पराया; किसी को शत्रु और किसी को मित्र मत समझिये।

मोक्ष या मुक्ति अथवा परमानन्द को प्राप्त करने का यही मार्ग है कहा भी है।

जो तू प्रभु-नाम से अपने मुहब्बत दिल बढ़ावेगा।
कहा मेरा मानले प्यारे, फिर आवेगा न जावेगा ॥
जन्म और मरण दुःख-दोज़ख़, तुझे हरगिज़ न आवेगा।
वही प्रभु नाम तुझको, सब अज़ाबों से बचावेगा ॥
रहेगा याद में हरदम, कदम आदिम कहावेगा।
यहां वहां दो जहानों में, तुझे शाबाश दिलावेगा ॥
समझ मकबूल जब तुझको, सभी कोई सर नवावेगा।
डरेगा काल भी तुझसे, न जम ज़ालिम सतावेगा ॥
बचेगा ग़ज़ब गालिब से नहीं ग़म ग़ैब खावेगा।
मिटेगा ख़ौफ़ का ख़तरा, खुशामद खुद करावेगा ॥
हुकम जो मुर्शद 'विद्यादास' का, दर अमल लावेगा।
मिलेगा मोहन प्यारे से, शुभा मिट सुख समावेगा ॥

सद्गुरु ।

[ले० श्री "दिनेश"]

भक्तवर कबीर दास जी ने अपने चलाये हुए पन्थ में सद्गुरु का स्थान बहुत ही बड़ा दिया है। यहाँ तक कि सद्गुरु को ईश्वर से भी श्रेष्ठ माना है। ऐसा देखा जाता है कि आज भी कबीर मत के अनुयायी लोग किसी धार्मिक अनुष्ठान में पहले सद्गुरु का ही स्मरण करते हैं। यदि गुरु और गोविन्द किसी भक्त के समक्ष एक साथ आ जांय तो पहले किनको प्रणाम करना चाहिए, इसके सम्बन्ध में कबीर दास जी ने कहा है:-

"गुरुगोविन्द दोउ खड़े, काको लागों पांय ।
धन्य गुरु निज शिष्य को गोविन्द दिया बताय ॥"

वस्तुतः सद्गुरु का स्थान गोविन्द (ईश्वर) से भी ऊंचा है। अपने गुरु की प्रार्थना में कबीर दास जी कहते हैं:-

गुरु को कीजिय दण्डवत, कोटि कोटि परनाम ।
कीट न जाने भृंग को, करिले आप समान ॥

सब धरती कागद करूं, लेखनि सब बनराय ।
सात सिन्धु की मसि करूं, गुरु गुण लिखा न जाय ॥

केवल कबीरदास ने ही नहीं, बरन् सभी ऋषि-मुनियों ने धर्म-संस्थापकों ने और सन्त महात्माओं ने आध्यात्मवाद में गुरु की महत्ता और आवश्यकता बतलायी है। क्योंकि जो लोग ईश्वर के पास पहुंचे हैं, कुछ भी आध्यात्मिक ज्ञान जिन लोगों ने प्राप्त किया है, वह सब गुरु की कृपा से हुआ है। "बिना गुरु के ज्ञान नहीं" यह एक प्रचलित कहावत है। और बिना ज्ञान के संसार में कुछ प्राप्त ही नहीं हो सकता। यह बात निर्विवाद सत्य है किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए एक गुरु की आवश्यकता अवश्य पड़ती है। सभी लोग शुकदेव मुनि की तरह जन्म ही से ज्ञानी पैदा नहीं होते। जन्म लेने के साथ ही भगवान् बच्चे को पूर्ण अज्ञानी बना देता है। रोने और दूध पीने की अपेक्षा बच्चे को कुछ भी नहीं आता। सृष्टि रचना में चतुर परमेश्वर उसके ज्ञानकोष को अन्दर ही कहीं छिपा कर रख देता है जिसका पूर्ण विकाश कोई गुरु ही कर सकता है।

गुरु कई प्रकार के होते हैं। माता, पिता या परिवार के लोग जो उस अबोध बच्चे को कालान्तर में बैठना, उठना चलना, बोलना, इत्यादि सिखलाते हैं, ये भी उस बच्चे के एक प्रकार के गुरु ही हुए। यदि ये गुण उसे सिखलाये नहीं जाते तो कभी भी यह सम्भव नहीं था कि वह बच्चा आपही बोलना या चलना फिरना सीख जा सकता था। जब लड़का कुछ बड़ा होता है तो उसे विद्या सिखाने वाले एक शिक्षा गुरु होते हैं। बिना गुरु के कोई शिक्षा भी आप ही आप प्राप्त नहीं कर सकता।

जिस किसी भी क्षेत्र में किसी के ज्ञान का विकाश होता है वह किसी गुरु के ही द्वारा होता है। अब यह बात निर्विवाद स्वयं सिद्ध है कि उसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में भी एक गुरु की आवश्यकता—महान आवश्यकता पड़ती है। जिसके जीवन का उद्देश्य एक आध्यात्मिक पुरुष होना हो, जिसके दिल में यह शुभ लगन पैदा हो कि मैं संसार में धार्मिक जीवन व्यतीत करूं, जिसके हृदय में अपने दीदार को पाने के लिए उमड़ती हुई चाह हो, उसे सर्वप्रथम अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक गुरु की आवश्यकता पड़ेगी। नाव को नदी में छोड़ देने के पूर्व एक चतुर कर्णधार की आवश्यकता होती है। नहीं तो निश्चय ही नाव और नाव पर चढ़ने वाला अपने सारे अरमानों के साथ बीच सागर में सर्वनाश में विलीन हो जायगा। मनुष्य का जीवन एक नौका है। संसार एक अगम और अथाह समुद्र है। जीवन रूपी नौका को संसार रूपी सागर से पार करने के लिए एक प्रवीण नाविक की आवश्यकता है। अन्यथा कभी न कभी यह जीवनतरणी अवश्य ही गरक जायगी। यही नाविक हमारा जीवन गुरु होगा।

अध्यात्मपथ तलवार की धार के समान है। खेल नहीं है इस पर पैर रखने के पूर्व ही खूब सोच समझ लेना चाहिए। बिना गुरु के पथ प्रदर्शक के कोई आदमी अध्यात्मपथ पर चल नहीं सकता। जो मार्ग मालूम ही नहीं है, उस पर बिना किसी के बताए कौन चल सकता है? और यदि चलेगा भी तो वह अपने अभीष्ट स्थान को कभी भी नहीं पहुंच सकता। इसलिए इस जीवन में प्रवेश करने के पूर्व एक सद्गुरु की खोज करनी चाहिये। इस समय में मनुष्य को बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये। कठिन कसौटी पर कसने पर भी जो खरा उतरे, उसी को अपना

गुरु बनाना चाहिये। क्योंकि एकमात्र गुरु पर ही आध्यात्मिक भविष्य का बनना बिगड़ना अवलम्बित है। यदि किसी ने कोई ऐसा गुरु कर लिया जो गुरु होने के योग्य नहीं था तो उसके जीवन की बड़ी से बड़ी और अमूल्य साधना भी मिट्टी में मिल जायगी और वह कहीं का न रहेगा। यदि गुरु सद्गुरु हुआ तो वह अयोग्य शिष्य को भी विपरीत दशाओं के विरुद्ध युद्ध करता हुआ भी पार कर देगा। सद्गुरु की कृपा के एक संकेत ही से शिष्य निहाल हो जा सकता है। गुरु के खुश हो जाने पर ही आरुणी बिना पढ़े ही वेद और शास्त्रों का पारङ्गत हो गया।

अतएव ऐसे ही समय के लिये भक्त शिरोमणि सूरदास हमें अनुशासन करते हैं–

गुरु कीजिए निरखि परखि के ज्ञान रहनिका सूरा॥

स्वयम् कबीर दास ने भी कहा है:–

हीरा पाया परखि के धन में दिया आन।
चोट सही फूटा नहीं, तब पायी पहचान॥

परन्तु ऐसा भी नहीं हो कि जीवन भर गुरु ही खोजते रह गये। अब भी इस धर्म प्राण भारत की तपोभूमि में अनेक संत महात्मा विचरते रहते हैं। परन्तु वे खोजी को ही मिलते हैं! परम हंस स्वामी राम कृष्ण ने तो कहा है "गुरु मिलें अनेक चेला मिले न एक। गुरु तो होते हैं परन्तु शीघ्र पात्र शिष्य नहीं मिलते। शिष्य होना गुरु होने से अधिक कठिन भी है गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी दोहावली में कहा है:–

स्वामी हो नो सहज है, दुर्लभ हो नो दास।
गाड़ा लाये उनको, लागी चरण कपास॥

हाँ, जब सद्गुरु मिल जांय तब शिष्य के कर्त्तव्य की बारी आती है। कर्त्तव्य की आंच में गुरु और शिष्य कौन योग्य उतरते हैं। यही देखना है। गुरु अब शिष्य की परीक्षा लेगा, मगर अब शिष्य गुरु की परीक्षा नहीं ले सकता। ऐसा करने पर शिष्य अपने कर्तव्य से च्युत होता है। स्वामी रामकृष्ण जी की, "गुरु मिले अनेक, चेला मिले न एक" की बात को ध्यान में रखते हुए अपने को एक योग्य शिष्य बनाना ही, चेले का प्रथम कर्त्तव्य होता है। क्योंकि जब तक शिष्य अपने को योग्य नहीं बना लेता है तब तक गुरु भी उसे कुछ नहीं दे सकते क्योंकि सद्गुरु यदि किसी को कुछ देते वा बतलाते हैं तो उसको योग्य पात्र समझ कर ही वे ऐसा करते हैं।

एक योग्य शिष्य होने के लिये बहुत से नियमों का पालन करना पड़ता है। इसकी अपेक्षा गुरु शिष्य को कठिन से कठिन अग्नि-परीक्षा में डालता है। अतएव शिष्य को उन परीक्षाओं में भी सफलता प्राप्त करनी चाहिये। ऐसी सफलता पाने के लिए एक वस्तु की महान आवश्यकता है वह है पूर्ण आत्म-समर्पण। शिष्य अपने को गुरु के हाथ पूर्ण रूपेण मनसा, वाचा, कर्मणा समर्पित करदे इसीमें उसका सारा कल्याण है। यहीं तक उसके कर्त्तव्य की अन्तिम सीमा है। अपने को अपना न समझ कर, "अहं" भाव को दूर कर, अपने को पूर्णतया गुरु का समझना गुरु की इच्छा और आज्ञा से कोई भी काम, बिना उसकी योग्यता और अयोग्यता पर विचार किये ही कर देना यही आत्मसमर्पण है। इसके सम्बन्ध में कबीरदास ने क्या ही कहा है:–

प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाहिं।
जब मैं था तब गुरु नहीं, जब गुरु तब मैं नाहिं॥

यही पूर्ण आत्म समर्पण की पर्याप्त परिभाषा हो सकती है। बिना किसी चीज का विचार किए ही अपने को गुरु की कृपा पर छोड़ देना चाहिए।

जो धर्म एक पतिव्रता नारी का होता है वही एक शिष्य का भी होना चाहिए। जो ऐसा करता है उसको अपने लिये कुछ चिन्ता भी नहीं करनी पड़ती है। उसके जीवन का सारा भार, उसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसके गुरु पर रहता है फिर उसको अपनी चिन्ता क्यों ? यदि गुरु सद्गुरु है तो शिष्य का वारोपार होना अवश्यम्भावी है। नाव को पार लगाने की चिन्ता नाविक को रहती है न कि नाव को। नाविक की अपेक्षा दूसरे को नाव के पार लगाने की चिन्ता करना व्यर्थ है। बात अंत को यही रही कि यदि कर्णधार प्रवीण और चतुर है तो नाव को पार लगा देगा। हमें तो अपना कर्तव्य पालन करना है।

मैं सेवक समरथ का कबहुं न होय अकाज।
पतिव्रता नांगी रहै तो वाही पति को लाज ॥

अतएव न शिष्य के लिए अपना कोई धर्म है न अपनी कोई साधना। "उसका" तो गुरु का हो चुका है। जिस प्रकार भगवान कृष्ण ने गीता में अर्जुन के प्रति कहा है:-

सर्वधर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वाम् सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

उसी प्रकार इसको ध्यान में रखते हुए शिष्य को सब धर्म छोड़ कर गुरु के शरण में जाना चाहिए और इसी में शिष्य का मंगलमय कल्याण होगा।

चरित-चर्चा

(ले० साहित्य-भूषण काव्यतीर्थ, श्री पं० महादेव शर्मा साहित्याचार्य)

शान्तेः समुद्रं, विनयस्य पुञ्जम्,
नीत्याश्रयं, विश्वविनोददक्षम्।
धर्मादिकस्यापि विधायकन्तु,
महात्मनाम्नो चरितं पुनीयात् !

जिसमें मानव जीवन को अनन्त अमृतमय शान्ति की ओर लेजाने की अद्भुत क्षमता है, जो उद्धत एवं उग्र पशुजीवन में विनय का अद्भुत सम्मिश्रण करने में शक्तिशाली है, जिसने नीति के सरल पथ के साथ, विश्व की विषादमय रंगभूमि को विनोद की सौम्यक्रीड़ाभूमि बनाने में सदा सफलता प्राप्त की है, जो धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की पुण्य चतुष्टयी को उपलब्ध करने का सरल साधन है, ऐसा महात्माओं का पवित्र चरित्र हमारे अन्तः करण को शुद्ध करे।

माया-प्रपञ्चे बलवद्-विमूढम्,
लोभात्मकं चञ्चल-चित्त वेगम्।
ब्रह्म स्वरूपे विनिवेशकं सत्।
महात्मनाम्नो चरितं पुनीयात् ॥

जिस समय बाह्य दृष्टि से मनोहारि, चञ्चल चित्त का कुपथगामी वेग, मानव-जीवन को अमृत पद की ओर से सर्वथा विमुख करने वाली पापिष्ठा माया के प्रपञ्च में फंसाकर 'किं कर्तव्य विमूढ' बना देता है, उस समय उस दुर्धर चित्त-वेग को अक्षय शान्तिधाम ब्रह्मस्वरूप में बल पूर्वक सन्निवेश कराने में सक्षम महात्माओं का पुण्य-चरित्र हमारे अन्तः करण को पवित्र करे।

मनोभिलाषस्य सुपूरकं यत्।
मालिन्यदोषस्य निवारकं, शम् ॥
भावाभिगम्यं वचसात्वगम्यम्।
महात्मनाम्नो चरितं पुनीयात् ॥

सद्भावना-समुत्पन्न मानव अभिलाषाओं की पूर्ति करने में जिसको दैविक शक्ति उपलब्ध है, मानव के स्वभाव जन्य पापज दोषों की मल सहित को अपनी प्रतापाग्नि से भस्मसात् करने में जो सदा सन्नद्ध रहता है, शुद्ध भावनाओं द्वारा उपगम्य एवं व्यर्थ प्रलाप से अतिदूर, महात्माओं का कल्याणकारी चरित्र हमारे अन्तः करण को पवित्र करें।

सारंगपानी

(रचयिता प्रभुदेव ब्रह्मचारी भ० भ० आश्रम)

मद मोह की पीय रह्यो मदिरा ममता भ्रम में रत है अज्ञानी।
साधु को संग कभी न कियो जु भयो कबहूं तो करी मन ग्लानी ॥
इन्द्रिय भोगन मस्त रह्यो नित कबहुं न तत्व विचारियो प्रानी।
बारहि बार सहे दुःख द्वन्द भजे नहिं मन्द जु सारंगपानी ॥ १ ॥

२

ग्रन्थ अनेक पढे जु पढे बहु पन्थ सुपन्थ भये जग मानी।
ध्यान समाधि व योग क्रिया करि आत्म ज्ञान कियो बहु ज्ञानी ॥
वेद पुरान को भेद विज्ञान विमान चढे नभ बाज निसानी।
नहिं चित्त की गांठ खुलैं तबलौं जबलौं न भजे नर सारंगपानी ॥ २ ॥

योग-साधन

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती)

८५१ जिस प्रकार नदिएं अपना अपना नाम और रूप मिटाकर समुद्र में जा मिलती हैं उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष अपने नाम और रूपको मिटाकर पूर्ण पुरुष परमात्मा में जा मिलते हैं जो महान् से भी महान् है। (मुण्डक)

८५२. जिस तरह अग्नि से निकली हुई चिनगारियां अग्नि से पृथक् नहीं हैं क्योंकि वह अग्नि के सदृश हैं। वह चिनगारियां अग्नि से भिन्न भी नहीं हैं क्योंकि ऐसा होता तो उनका रूप ही भिन्न होता और वह चिनगारियां एक दूसरे से भी भिन्न होतीं। इसी तरह जीव जो कि ब्रह्म का ही अंश है न तो ब्रह्म से ही भिन्न है और न एक दूसरे

जीव से ही भिन्न है। यदि यह ठीक है तो क्या जीव भी ब्रह्म की भान्ति सर्वज्ञ है ? यदि कहा जावे कि सर्वज्ञ है तो जीवों को किसी प्रकार के उपदेश की आवश्यकता नहीं है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। जीव कुछ अंश में ब्रह्म से भिन्न है और कुछ अंश में उसके सदृश है।

८५३. जिस प्रकार सीपी से चान्दी का भान होता है उसी प्रकार यह नश्वर जगत् उसी समय तक सत्य प्रतीत होता है जब तक नित्य सनातन और अनन्त शुद्ध परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता है।

८५४. इच्छाओं, वासनाओं, चपलता और बुरे संस्कारों से ऊपर उठो, ध्यान स्वयं लगने लगेगा जिस प्रकार बिजली केन्द्र गृह से बल्ब में आप ही आती रहती है उसी प्रकार दैवी बिजली उस चित्त को जो कुवासनाओं से खाली होगया है आप ही भरदेगी। ईसा ने कहा है अपने आपको खाली करदे मैं तुझे पूर्ण करदूंगा।

८५५. इच्छाएं ध्यान में बाधा डालती हैं। पवित्रता उस समय आती है जब चित्त वासनाओं से खाली होजाता है। विवेक, विचार, जप, प्रार्थना, भक्ति, निष्काम कर्म, सत्संग और स्वाध्याय के अभ्यास से समस्त वासनाएं नष्ट होजावेंगी।

८५६. कामी पुरुष संसारी वासनाओं का समूल रूप से नाश नहीं कर सकता, वह एक न एक प्रकार की वासना में लिप्त रहता है।

८५७. शुभ-कार्य करने की इच्छा करो, क्रोध को वश करो, जो पदार्थ दूसरों को दान किए जा सकते हैं उनको छिपा कर मत रक्खो। यदि कोई दान करता हो तो उसे कभी मत रोको, धैर्य का कभी त्याग न करो, भीख मांगने से अधिक निकृष्ट कोई कर्म नहीं है। दूसरों को भिक्षा देने के पश्चात् भोजन करो। स्वाध्याय करो, संसार के व्यवहारों का अनुभव प्राप्त करके लोगों के साथ उत्तम व्यवहार करो।

८५८. जिस मनुष्य ने अपने मनको नहीं मारा है अर्थात् अहंकार को नहीं जीता है वह तुच्छ बातों पर नाराज़ होजाता है। उसका दिमाग बहुत शीघ्र उलट जाता है। जब कोई उसके चित्त के विरुद्ध काम करता है तो वह कोपित होजाता है।

८५९. मनुष्यों का विश्वास मत करो। ईश्वर पर विश्वास करो। वही तुम्हारा माता, पिता, गुरु, और मित्र है ! वह तुमको कभी नहीं भूलता। मनुष्य कमज़ोर, धोखेबाज़ और चंचल चित्त होते हैं।

८६०. जिस स्थान पर तुम्हारा कोष होगा वहीं तुम्हारा दिमाग और दिल लगा रहेगा। ऐसा मनुष्य परमात्मा में चित्त नहीं लगा सकता। धन तुम्हारा शत्रु है, इससे चित्त बहुत विक्षिप्त होता है। अध्यात्मिक धन का संग्रह करो जिसको चोर नहीं चुरा सकते।

८६१ कोई मनुष्य दो स्वामियों का सेवक बन नहीं सकता, वह अवश्य एक से ही प्रेम कर सकता है और जब एक से प्रेम करता है तो दूसरे से कुछ न कुछ द्वेष होना आवश्यक है। तुम शैतान और परमात्मा दोनों की पूजा एक साथ नहीं कर सकते। शैतान का त्याग करके ही परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती है।

८६२ यह आत्मा चलता है। स्थिर है, यह दूर है और निकट है, यह सबके भीतर है और सबके बाहर है।

८६३. कामी और लालची पुरुषों के लिए

आत्मा दूर है। यह विवेकी और विचारवान् पुरुषों के निकट है क्योंकि आत्मा अपना ही स्वरूप है। यह जिज्ञासु के बहुत ही निकट है क्योंकि जिज्ञासु सत्य की खोज में रहता है और यह सत्य स्वरूप है।

८६४. ब्रह्म अर्थात् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा इस साकार जगत् की उत्पत्ति का निमित्त कारण है, जिस प्रकार पानी में बुद् बुद् उत्पन्न होते हैं और पानी ही में लीन होजाते हैं इसी प्रकार संसार ब्रह्म से उत्पन्न होता है और उसी में लीन होजाता है।

८६५. मनुष्य का चित्त वायु की भान्ति चंचल है। यह संसार के पदार्थों में बिजली की भान्ति बड़ी तेज़ी से घूमता रहता है। यह एक पदार्थ को पसन्द और दूसरे को नापसन्द करता है और सदैव परिवर्तित अवस्था में रहता है। यह चित्त इन्द्रियों द्वारा बाह्य विषयों को अपने भीतर आकर्षित करता रहता है।

८६६. भक्ति धीरे २ फल लाती है। यह अगर की बत्ती की भान्ति शनैः २ खुशबू देती है। ज्ञान मिट्टी के तेल के तालाब से निकली हुई अग्नि ज्वाला की भान्ति है या कागज़ के ढेर से निकली हुई अग्नि की लपटों की भान्ति है।

८६७. प्राणायाम का अभ्यासी अपने स्वाँस को रोककर अपनी छाती पर पत्थर तुड़वा लेता है और उसको कुछ कष्ट नहीं होता क्योंकि उसने अपने प्राण को वश में कर लिया है। चक्की में वह दाने जो बीच में रहते हैं पिसने से रह जाते हैं और जो इधर उधर रहते हैं उनका चूर्ण होजाता है इसी प्रकार यदि तुम अपनी वृत्तियों को रोक कर भगवान् कृष्ण के चरण कमलों में लगा सको तो तुम संसार के दुःख, शोक, विपत्ति और तुच्छ झगड़ों से बच सकते हो।

८६८. जिस प्रकार नमक का डला बाहर और भीतर से एक रूप होता है। उसी प्रकार ब्रह्म भी बाहर और भीतर से ज्ञान का पुञ्ज है।

८६९. भेद केवल उपाधि का है। यह उपाधियां शरीर, मन, प्राण, इन्द्रियें, पञ्च भूत और पञ्च तन्मात्राएं हैं। जब यह उपाधियां नष्ट होजावेंगी तो भेद मिट जावेगा और महान् आत्मा अपने असली रूप में स्थित रह जावेगा।

८७०. योग्य जिज्ञासु वह है जिसने ब्रह्म श्रोत्री और ब्रह्मनिष्ठ गुरु से वेदों का अध्ययन किया है, जिसने तप, निष्काम कर्म और भक्ति द्वारा अपने अन्तःकरण को शुद्ध किया है। जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में किया है, जिसने ब्रह्मचर्य का व्रत धारण किया है, जिसका गुरुवाक्य और श्रुति में विश्वास है। जो विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व रूपी साधन चतुष्टय सम्पन्न है।

८७१. जीव प्रलय काल में ब्रह्म में ऐसे ही समाए रहते हैं जैसे स्वर्ण के परमाणु मोम की गेन्द में समाजाते हैं।

८७२. सत्, रज और तम प्रकृति के तीन गुण हैं। सत् से अन्तः करण बनता है, जिसमें मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार शामिल हैं। कान आदि ज्ञानेन्द्रियां भी इसी से बनती हैं।

८७३. रजोगुण से पांच प्राण बनते हैं जिनके नाम प्राण, अपान, समान व्यान और उदान हैं। हाथ आदि चार कर्मेन्द्रियें भी इसी से बनती हैं। पांच कर्मेन्द्रियें, पांच ज्ञानेन्द्रियें, पांच प्राण, मन और बुद्धि इनसे लिङ्ग शरीर बनता है, चित्त का समावेश मन में और बुद्धि का अहंकार में होजाता है।

———

श्री अक्कलकोट स्वामी महाराज का परिचय।

(ले० श्री रामचन्द्र सिंह यादव)

वैसे तो वर्तमान युग में ईश्वर तथा ईश्वरता पर विश्वास रखने वाले बहुत कम दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु जब मानवी बुद्धि हतबल हो कर कुण्ठित हो जाती है उस समय जिज्ञासा तृप्ति के लिये ईश्वर तथा ईश्वरता को मानना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है। साधु सन्तों का चरित्र यही बताता है। अक्कलकोट में एक स्वामी निवास करते थे। स्वामी महाराज का जन्म कहां हुआ, उनके माता पिता कौन थे, वे रहने वाले कहां के हैं, उन्हें वैराग्य कब कैसे प्राप्त हुआ? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर किसी को भी मालूम नहीं है। परन्तु अक्कल कोट ही उन्होंने अपना निवास स्थान बनाया था तथा अनेक भक्तगण उन्हें श्री दत्तात्रेय का चौथा अवतार मानते थे। स्वामी महाराज ने हिमालय बंगाल, हरिद्वार, बद्रि केदार, पैठण, मंगलवेढा, पंढरपुर आदि स्थानों की यात्रा की थी यह बात यथार्थ है।

यह यजुर्वेदी, काश्यप गोत्री मीन राशि का नृसिंह भान ब्राह्मण जब अक्कल कोट में आ बसा उस समय से ही उसने अनेक चमत्कार कर दिखाये और सर्वसाधारण जनता को अपनी ओर आकर्षित किया।

सिद्ध पुरुष वर्णाश्रम धर्म के परे होते हैं, उनकी वृत्ति बालोन्मत्त पिशाचवत् होती है, सुख दुःख की उन्हें परवाह नहीं ऐसा कहते हैं। इसका प्रत्यन्तर स्वामी महाराज के जीवन में पूर्ण रूपेण दीखता था। स्वामी जी को खेलने के लिये गेहूं, चांवल, चने, बादाम, आलू, अण्डे यह चीजें अच्छी लगती थीं। उसी प्रकार छोटे बालकों के समान उन्हें नहलाना धुलाना पड़ता था। संन्यासी होते हुए भी जप तप अनुष्ठान पूजा करते हुए स्वामी महाराज को किसी ने भी देखा नहीं। परन्तु अन्तर्ज्ञान से दूसरों का हृदय वे इस उत्तमता से पहचानते थे कि कितना ही होशियार चालाक तथा ईश्वर में विश्वास न रखने वाला क्यों न हो वह स्वामी महाराज के सामने बिल्कुल नम्र लीन हो जाता था।

स्पृश्या-स्पृश्य, उच्च नीच, हिन्दु मुसलमान मूर्ख विद्वान् यह भेद स्वामी महाराज के पास नहीं था। मूर्ति पूजा के तो आप बिल्कुल विरुद्ध थे। स्वामी जी का उपदेश था कि जड़ पूजा करने से कोई लाभ नहीं, किन्तु गुरुदेव का भजन पूजन करने से ही लाभ है। आपत्तियों से घिरे हुए अनेक लोग स्वामी जी की शरण लेते थे। ऐसे लोगों में राजा, महाराजा युरोपियन, पारसी, सय्यद, मुसलमान, जैन, लिंगायत, वैष्णव, वारकरी, संन्यासी, सुधारक सनातनी शास्त्री कनफटे आदि सब प्रकार की जनता थी। स्वामी जी के दर्शन के पश्चात् हर एक की यह भावना होती थी कि स्वामी जी सर्वशक्तिमान् हैं, और अपना दुःख यदि निवेदन किया जाय तो अवश्य ही मिट जायगा। अतएव दुःखी दीनों का घेरा सदैव चारों ओर पड़ा रहता था। स्वामी जी सबों की कुशल विचारते हुए हर एक को कुछ न कुछ ऐसा रास्ता बताते थे कि जिस कार्य द्वारा उसका दुःख मिट जाता था। भक्तगणों को गुरुदेव का निष्ठा पूर्वक पूजन करना चाहिये, तीर्थयात्राओं को जाना छोड़

कर निज कर्तव्य में विलीन होना चाहिये धर्म-कर्म जप तप भजन पूजन का आडम्बर अस्वीकार करना चाहिए, आलस्य को त्याग देना चाहिए ये ही स्वामी जी का उपदेश था।

सन् १८५७ ई० की क्रान्ति स्वामी जी ने अपनी आँखों देखी थी। उसके कुछ वर्ष पूर्व से स्वामी जी अपने कम्बल से ऊन के धागे निकाल कर एक रेखा में उन्हें लगा कर उनसे स्वयं बात चीत करते दीखते थे। किसी के पूछने पर मैं पल्टन तयार कर रहा हूं यह उत्तर भी दे देते थे।

सन् १८५७ का स्वप्न उन्हें दीख रहा था परन्तु वह निष्फल होगा यह भी जानते थे। इसी कारण उन्होंने राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस स्वामी दयानन्द के समान इन्होंने धर्म का प्रचार नहीं किया। उनका कथन था कि भविष्य को हम बदल नहीं सकते। हमारा कार्य तो केवल इतना ही है कि धर्म के आडम्बर से सर्वसाधारण जनता को बचाना तथा उसे कर्तव्यतत्पर बनाना। यह कार्य स्वामी जी ने अत्यन्त उच्चता से किया। इस का सुपरिणाम बम्बई इलाके में पूर्ण रूप से दृष्टि गोचर हो रहा है।

इस प्रकार स्वयं नश्वर शरीर का कार्य समाप्त होते देख स्वामी जी ने शके १८०० चैत वदी त्रयोदशी को अपना देह त्याग दिया। देह त्यागते समय उनके शरीर तथा मुख मंडल पर ईश्वरता की कान्ति तेजोमान हो रही थी। आंखों में आकर्षण-शक्ति टपक रही थी। भक्तगणों के मृतवत् चेहरे देख स्वामी जी ने कहा:-

"अनन्याश्चिन्तयंतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥"

इस प्रकार स्वामी जी अपना देह यद्यपि छोड़ गये हैं। तथापि उनकी शिष्य शाखाएं चारों ओर फैली हुई हैं। और उनकी परम्परा अभी तक चली आ रही है। बम्बई में स्वामी जी का एक मठ है। उस मठ के प्रचार द्वारा सर्व जातियों में गुरुवार को भजन तथा गुरुदेव की भक्ति का मार्ग खुल गया है।

स्वामी जी की समाधि अक्कल कोट में है, और वहां भी इसी कार्य का प्रचार होता है। स्वामी जी का उपदेश अत्यन्त सरल तथा उपयुक्त है। वे कहते हैं:-

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदं।
मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥

× × × ×

श्रुति स्मृती न वक्तव्ये, केवलं गुरुसेवनम्।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेषधारिणः॥
गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापंच दैन्यंच सद्यः साधु समागमः॥

और यह उनका कहना निरर्थक है यह कौन कह सकता है?

(आशा से उद्धृत)

———

गायत्री

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ॥

गायत्री मन्त्र में १ ॐ, २ भूः, ३ भुवः, ४ स्वः ५ तत्, ६ सवितुः, ७ वरेण्यम् ८ भर्गो, ९ देवस्य यह नौ नाम हैं। इन नौ नामों में भगवान् की स्तुति की गई है। 'धीमहि' उपासना है। 'धियो यो नः प्रचोदयात्' यह प्रार्थना है। इसमें पाँच अवसान हैं। 'ॐ' यहां प्रथम अवसान है। 'भूर्भुवः स्वः' दूसरा, 'ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्' तीसरा, 'भर्गो देवस्य धीमहि' चौथा, 'धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ' यहाँ पांचवाँ अवसान है। प्रत्येक अवसान पर मन्त्र जपते समय कुछ ठहरना चाहिये। ओं=सर्वव्यापक सबकी रक्षा करने वाला; भूः=सत्य स्वरूप; भुवः=चैतन्य स्वरूप, ज्ञान स्वरूप; स्वः=सुख स्वरूप; तत्=वह अनन्त परमात्मा; सवितुः=सबको उत्पन्न करने वाला; वरेण्यम्=ग्रहण करने योग्य, तारीफ के लायक; भर्गो=सब पापों को भर्जन नाश करने वाला, शुद्ध तेजः स्वरूप; देवस्य=प्रकाश और आनन्द के देनेवाला दिव्य स्वरूप ऐसे परमात्मा का; धीमहि=हम सब ध्यान करते हैं; धियः=बुद्धियों को; यो=वह परमात्मा; नः=हमारी; प्रचोदयात्=धर्मार्थ काम मोक्ष में प्रेरणा करे, संसार से हटाकर अपने स्वरूप में लगावे और शुद्ध बुद्धि प्रदान करे।

गायत्री मन्त्र का सविता देवता है, अग्नि मुख है, विश्वामित्र ऋषि है, गायत्री छन्द है और उपनयन, प्राणायाम और जप में विनियोग (इस्तेमाल) है।

यह गायत्री मन्त्र आदि मन्त्र है। अन्य मतों की तो बात ही क्या है वेद में भी इसके अतिरिक्त ऐसा कोई मन्त्र नहीं है जिसमें एक ही मन्त्र में भगवान् की स्तुति उपासना और प्रार्थना तीनों बातें हों। भगवान् के भजन में पहले भगवान् की स्तुति की जाती है, फिर उपासना-ध्यान किया जाता है और पश्चात् भगवान् से प्रार्थना की जाती है। गायत्री मंत्र में स्तुति, प्रार्थना और उपासना तीनों हैं। गायत्री ही एक ऐसा मन्त्र है जो हिन्दु मात्र के लिये एक मन्त्र हो सकता है। भगवान् वेद में आज्ञा करते हैं "समानो मन्त्रः" कि तुम्हारा मन्त्र एक हो' अतः हिन्दुमात्र का एक गायत्री मन्त्र होना चाहिये।

सारभूतास्तु वेदानां गुह्योपनिषदो मताः।
ताभ्यः सारस्तु गायत्री तिस्रो व्याहृतयस्तथा ॥

चारों वेदों का सार उपनिषद् हैं और उपनिषदों का सार गायत्री है।

एवं यस्तु विजानाति गायत्रीं ब्राह्मणस्तु सः।
अन्यथा शूद्रधर्मा स्याद् वेदानामपि पारगः ॥

इस प्रकार से जो गायत्री को जानता है वह ही ब्राह्मण है और जो नहीं जानता वह चारों वेदों का पारगामी भी क्यों नहीं हो शूद्र है।

या सन्ध्या सैव गायत्री द्विधा भूता व्यवस्थिता।
सन्ध्या उपासिता येन विष्णुस्तेन उपासितः ॥

जो गायत्री है वही सन्ध्या है और जो सन्ध्या है वही गायत्री है। जिसने गायत्री की उपासना करली उसने विष्णु भगवान् की उपासना

करती। गोभिल ऋषि कहते हैं:-

सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या नैवाप्युपासिता।
जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते॥

जिसने गायत्री को नहीं जाना और उपासना नहीं की वह जीता हुआ शूद्र है और मर कर कुत्ते की योनि को प्राप्त होगा।

गायत्री प्रोच्यते तस्मात् गायन्तं त्रायते यतः।

इसका नाम गायत्री इसलिये है कि यह गाने वाले की रक्षा करती है।

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च पावनम्॥

गायत्री वेद की माता है, गायत्री पाप नष्ट करने वाली है गायत्री के अतिरिक्त भूलोक में तथा स्वर्ग लोक में पवित्र करने वाला और नहीं है।

मनु भगवान् ने कहा है कि विधि यज्ञ से जप यज्ञ दश गुणा फल दायक है, इसमें भी जिसमें होठ ही हिलें शतगुणा और मानसिक सहस्र गुणा फल देता है। लेटा लेटा, बैठा बैठा, डोलता फिरता जिसभी अवस्था में हो मनुष्य गायत्री का मानसिक जप कर सकता है। इसके जपने में किसी प्रकार का भी विधि निषेध नहीं है। इसके जपने से सब कामना पूरी होती हैं और अन्त में स्वर्ग-धाम और मोक्ष की प्राप्ति होती है इस मन्त्र से प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल और अर्ध रात्रि के समय इस प्रकार चार बार सन्ध्या करनी चाहिये। नौ नामों से भगवान् की स्तुति करे फिर "धीमहि" से भगवान् का इस प्रकार ध्यान करे।

"योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहमस्मि ओं खं ब्रह्म"

कि जो सूर्य में स्वर्ण जैसे रंग का प्रकाश स्वरूप पुरुष है वह मैं हूं। फिर 'धियो यो नः प्रचोदयात्' से प्रार्थना करे। अर्थ सहित चाहे एक भी मन्त्र दिनमें चार बार जपो वह भी कल्याण के देने वाला है। वेद का मन्त्र है, भगवान् की आज्ञा है, इससे पाप नष्ट होते हैं और ज्ञान का प्रकाश होता है।

भजन

यह सुन्दर नर तन पाय वृथा क्यों जन्म गंवाते हो॥
गर्भवास में कौल किया क्यों उसे भुलाते हो।
बालपना हंस खेल गंवाया अब तनको सजाते हो॥
धरम करम दिये छोड़ पाप के बीज लगाते हो।
झूंठ कपट का जाल बिछाकर धनको कमाते हो॥
अन्त समय कोई काम न आवे फिर पछताते हो।
कहै नारायणदास राम को क्यों बिसराते हो॥

२

मन तू राधा कृष्णा बोल तेरा क्या लगेगा मोल।
गर्भ मांहि ऊंधा लटकाया वहां कर आया कौल॥
झूंठ कपट को छोड़ बावरे मनकी घुन्डी खोल।
परतिरिया और परधन का तू मति मनावे मोल॥
ये काया अमृत सी पाकर मतना विषको घोल।
मात पिता से नफरत आवे तिरिया से कर चोल॥
मार पराई निरखन कारण मत गलियन में डोल।
निशि दिन बीती जाय उमरिया कहा बजावे ढोल॥
राम रटन सम और न कोई कांटे में धर तोल।
यम का दूत पकड़ ले जायगा खूब लगावे धोल॥
मन चाहा तूं कर यहां पर आगे नहीं पोल है।
यह स्वांसा तू वृथा गमावे इसका महंगा मोल॥
कुटुम्ब कबीला सब मतलब का अन्त मचावे रोल।
नारायण का भजन किये बिन उम्र गमाई होल॥

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।-)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)		मूल्य नित्य पाठ
४.	वेदोपनिषद्		।-)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	-)।
६.	ज्ञानधर्मोपदेश	"	-)॥।
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	=)
९.	सत्य शब्द संग्रह	"	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	"	-)॥।
११.	शब्द सार संग्रह	"	-)।
१२.	शब्दसंग्रह	"	-)॥
१३.	सारसंग्रह	"	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	"	≡)।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	"	।≡)
१७.	भगवद्भक्तांक	"	॥≡)
१८.	भगवदंक	"	॥।)
१९.	गवांक	"	१।)
२०.	महात्मांक	"	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।